सत्संग–सुधा

(वचनामृत)

तृतीय भाग

महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज

अखिल भारतीय सन्तमत-सत्संग प्रकाशन-समिति

प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान
अखिल भारतीय सन्तमत–सत्संग प्रकाशन–समिति
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट
पत्रालय–बरारी, भागलपुर–३

प्रथम संस्करण : ३,१०० प्रतियाँ, सन् २००४ ई०
द्वितीय संस्करण : ३,१०० प्रतियाँ, सन् २००९ ई०
तृतीय संस्करण : ३,१०० प्रतियाँ, सन् २०१२ ई०

मूल्य : 20/–रुपये मात्र

मुद्रक
शांति–संदेश प्रेस
महर्षि मेँहीँ आश्रम,
कुप्पाघाट, भागलपुर—३ (बिहार)

महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज का

उद्गार

आज विज्ञान का युग है। वैज्ञानिक अविष्कारों से नए-नए चमत्कार हो रहे हैं। सुख-सुविधाओं में अभिवृद्धि हो रही है। देश और काल की दूरी दूर हो गई है। परन्तु व्यक्ति के हृदय की दूरी बढ़ गई है। साहचर्य, सामंजस्य, सहयोग, सद्भाव आदि गुणों का अभाव होता जा रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में व्यक्ति राग-रोष, घृणा-द्वेष से संचालित दीखता है। विशेषकर धार्मिक असहिष्णुता देश और समाज को कलंकित-विखंडित करने पर तुला है।

ऐसी विषम परिस्थिति में संतों के ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में हम कह सकेंगे—

जो मारग श्रुति साधु दिखावै ।
तेहि मग चलत सबै सुख पावै ॥

समाज और देश के कल्याण के लिए जिन संतों ने अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया, उनमें महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज का नाम बहुत श्रद्धा-भक्ति से लिया जाता है ।

आप विश्वकल्याण की भावना से प्रेरित होकर संतों के ज्ञान (संतमत) का प्रचार करते रहे। आपकी असीम अनुकम्पा से श्रीचरणों में बैठकर आपकी अमूल्य वाणियों को मैं लिपिबद्ध किया करता था, जो सन् १९५० ई० से शांति-संदेश पत्रिका में प्रकाशित होती रही है।

अतीव प्रसन्नता की बात है कि सत्संग-सुधा (तृतीय भाग) के रूप में उन अनमोल प्रवचनों का संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है। मेरा विश्वास है कि जो पाठक इन उपदेशों का अध्ययन-मनन कर अपने जीवन में उतारेंगे उनका उभय लोक मंगलमय होगा। इस सद्कार्य में जिन सज्जनों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहयोग किया है, उन्हें शुभकामना सहित मेरा आशीर्वाद है।

'संतसेवी'
०१.१२.२००१

सत्संग-सुधा, भाग-३ संत सद्गुरु महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज के २४ उपदेशों का संकलन है। इसमें सद्गुरुदेव ने मानव-जीवन के चौमुखी विकास पर प्रकाश डाला है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के जिज्ञासुओं के लिए तो यह पुस्तक अनुपम मार्गदर्शक है। लोक और परलोक-निर्माण हेतु इसमें सारे तथ्य भरे हुए हैं। सद्गुरुदेव की संलग्नता से सेवा करनेवाले सेवक महर्षि संतसेवी परमहंसजी महाराज की ओजस्विनी लेखनी के फलस्वरूप ही आज यह पुस्तक के रूप में है।

पाठकों की माँग पर इस पुस्तक को प्रकाशित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। आशा है, यह पुस्तक आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए परमात्म-साक्षात्कार का पथ-प्रदर्शन करेगी।

गुरु-जयंती
०५ मई, २०१२ ई०

प्रकाशक
अखिल भारतीय संतमत-सत्संग प्रकाशन समिति
महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर—३

विषय-सूची

१. सब कोई सत्संग में आइए

प्यारे लोगो !

पहले वाचिक-जप कीजिए। फिर उपांशु-जप कीजिए, फिर मानस-जप कीजिये। उसके बाद मानस-ध्यान कीजिए। मानस-ध्यान में कोई स्थूल-रूप मन में बनाकर देखा जाता है। अपने-अपने इष्टदेव के रूप को मन में बनाकर देखना, मानस-ध्यान कहलाता है। यदि विचार करेंगे तो मूल में गुरु आ जाते हैं; क्योंकि शिक्षा देनेवाले को गुरु कहते हैं। इसलिए हमने तो गुरु का रूप रख लिया है और आपलोगों को भी सलाह देता हूँ कि गुरु-रूप का ध्यान कीजिए। यदि गुरु में श्रद्धा नहीं है, किसी दूसरे इष्टदेव में श्रद्धा है तो जो कुछ करना है, सो कीजिए। लेकिन तब आपकी गुरु में श्रद्धा नहीं। मानस-ध्यान के बाद होता है सूक्ष्म-ध्यान यानी विन्दु-ध्यान। विन्दु-ध्यान के आगे भी ध्यान है, वह है नादानुसंधान। नादानुसंधान के बाद कुछ नहीं बचता है। नादानुसंधान में बारीकी में ध्यान ले जाने से वह मिलता है, जो बारीक से बारीक शब्द है। उस बारीक शब्द को जानना चाहिए, जो परमात्मा से ही निकलता है—स्फुटित होता है। जो स्फोट-शब्द को जानेगा, वह परमात्मा—परमेश्वर को पाकर कृतकृत्य हो जाएगा।

खाने-पीने का बन्धन रखना उत्तम है इसलिए सात्विक भोजन होना चाहिये। राजसी भोजन मन को चंचल करता है। तामसी भोजन मन को नीचे गिराता है। सात्विक भोजन में भी जैसे गाय का दूध है, गाय के दूध को बेसी औटने से राजस हो जाता है। मांस-मछली—अण्डा आदि तामस-भोजन है। साधक को राजस और तामस भोजन छोड़कर सात्विक भोजन करना चाहिए।

पहले के लोग हवा पीकर रहते थे। आजकल हवा पीकर नहीं रह सकते। ध्यान कीजिए, ध्यान में प्रणव-ध्वनि को ग्रहण कीजिए और मोक्ष प्राप्त कीजिए। मनुष्य जीवन का जो परम-लक्ष्य है मोक्ष, उसको प्राप्त कर लीजिए। सन्तमत का सार सिद्धान्त है-गुरु, ध्यान, सत्संग। सच्चे गुरु मिल जाये तो उनका सत्संग करो। कहीं रहो, उनके बताए कायदे पर चलो तो उनका संग होता रहेगा, सत्संग होता रहेगा। बिना संत्सग के बात ठीक-ठीक समझ में नहीं आएगी। गप्प-शप्प सत्संग नहीं है, ईश्वर-चर्चा सत्संग है।

'धर्म कथा बाहर सत्संगा। अन्तर सत्संग ध्यान अभंगा।।'

सप्ताह में एक बार मैं यहाँ (सत्संग-मंदिर में) आता हूँ। आपलोगों को देखता हूँ तो बड़ी प्रसन्नता होती है। जिनको श्रद्धा होती है, वे बड़े से भी बड़े लोग होते हैं, तो आ जाते हैं। ऐसे जो बड़े लोग हैं, उनको मैं धन्यवाद देता हूँ। जो प्रणाम करने योग्य हैं उनको प्रणाम करता हूँ। जो आशीर्वाद देने योग्य हैं, उनको मैं आशीर्वाद करता हूँ।

जो सात दिन में यहाँ आते हैं, घर में सद्व्यवहार नहीं करते, तो वे सत्संग नहीं करते हैं। घर में रहना, पवित्रता से रहना, सद्व्यवहार से रहना है। स्त्रियाँ बच्चों की सेवा करें, पति की सेवा करें, आपस में मेल रखें, झंझट नहीं करें। जहाँ तक हो सके अपने को सत्य पर रखना। अपने को सत्य पर रखे बिना सत्संग नहीं। सत्य पर अपने को रखिए तो अकेले में भी सत्संग होता है।

सामूहिक सत्संग आप के घर में रोज हो सो नहीं हो सकता। जो कोई निजी उद्देश्य से सत्संग करते हैं यानी अपने उद्यम के लिए

सत्संग करते हैं तो वह सत्संग सत्संग नहीं है। स्त्रियाँ सत्संग करें, पुरुष सत्संग करें। किसी भी मजहब के लोगों को यहाँ मनाही नहीं है। सब कोई सत्संग में आइए।

एक-न-एक दिन संसार छोड़ना है। शरीर छोड़ने के पहले संसार में कोई उत्तम चिह्न-लकीर दे जाना अच्छा है। दूसरे संसार में भी आपकी उत्तमता का लोग गुण गावें और आप के मार्ग पर अपने को चलाकर बहुत पवित्र होते हुए शरीर छोड़ें। जो अपने खराब रास्ते पर रहते हैं, दूसरे को उस खराब रास्ते पर वे ले जाते हैं, इससे संसार में बहुत खराबी होती है। संसार को खराब मत करो, अपने खराब मत होओ।

मेरे यहाँ आने के पूर्व जो आपलोग श्रीसंतसेवी जी से सत्संग-वचन सुन चुके हैं, उनसे सन्तमत का ही प्रचार हुआ है। सन्तमत के अनुकूल ही बातें होंगी। सब लोग उनकी उत्तम बातों पर चलिए। सब बातें उत्तम कही गई होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

(महर्षि मे ँही ँ आश्रम कुप्पाघाट, भागलपुर १०.५.१९७४)
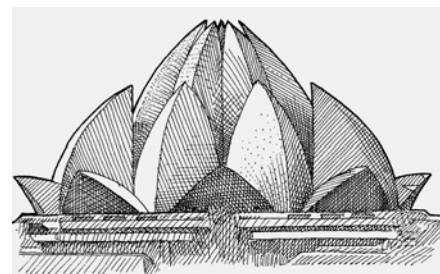
२. अंतःकरण को पवित्र रखो

प्यारे लोगो !

अपने शरीर को शौच से पवित्र करो। किन्तु इतने से ही यह पवित्र नहीं होता है। हृदय की पवित्रता असली पवित्रता है। हृदय में पाप—विचार न आने से हृदय पवित्र होता है। हृदय में पाप-विचार आने से पाप करते हैं। इस पाप-विचार से लोगों को डरना चाहिए। पाप-विचार करने से बाहर में लोग नहीं देखते हैं, किन्तु परमात्मा सभी जानते और देखते हैं। यदि कोई पाप करता है तो परमात्मा के सामने करता है, क्योंकि परमात्मा सब जगह है। बाहर में भी यदि कोई किसी को पाप करते देख लेता है तो लोग उसे दुरदुराते हैं। इसलिये पाप नहीं करना चाहिए। पाप करनेवाले को लोग लजाते भी हैं।

अपने शरीर की शुद्धि बाहर में शौचादि से और अन्तःकरण की शुद्धि पवित्र-कर्म करने से होती है। तुम्हारा शरीर शिवालय है, विष्णु-मन्दिर है। इसके लिए पैसे खर्च करने की जरूरत नहीं। अपना अन्तःकरण शुद्ध करना होता है। बाहर में लोग शिवालय, देवालय, बनाते हैं। इससे संसार में भले कुछ प्रतिष्ठा हो, किन्तु उससे उनको मोक्ष नहीं मिलता। यदि अपने अन्तःकरण को शुद्ध करता तो उससे मोक्ष हो जाता। सन्तों ने कहा कि यदि अपने को शुद्ध करके रखो तो तुम्हारा शरीर शिवालय है। इसमें शिवजी का दर्शन होता है। बाहर में लोग शिवलिंग को मोल लेते हैं, लोगों का बनाया हुआ। किन्तु आपके अन्दर ज्योति-रूप और नाद-रूप शिवलिंग परमात्मा का बनाया हुआ है। इसका ध्यान करते-करते परमात्मा मिल जाते हैं, इसलिये शब्द की बड़ी महिमा है। ज्ञानियों ने कहा कि जो अपने अन्दर में ठाकुरजी को देखना चाहता है, वह अपने

अन्दर ध्यान करता है। शिवालय में नीचे जलढरी और उसके ऊपर में शिवलिंग रहता है। उसी तरह अपने शरीर-रूप शिवालय में ज्योति-विन्दु जलढरी और उसके ऊपर नाद-शिवलिंग है। परमात्मा ने अमीर-गरीब, धनी-निर्धन, सबके लिये उनके शरीर में शिवजी की स्थापना कर दी है। सब कोई दर्शन कर सकते हैं। इसमें जाति-पाँति, धनी-निर्धन, विद्वान-अविद्वान की कोई बात नहीं। यदि जाति—पाँति की बात रहती तो कबीर साहब, गुरु नानक साहब कौन पढ़े-लिखे थे? सन्त रविदास और श्वपच भक्त कौन ऊँची जाति के थे?

जैसे शिवालय को पवित्रता से रखते हैं, उसी तरह अपने शरीर को भी पवित्र रखो और जिस किसी ने संसार में बड़ा-बड़ा काम किया है, उसका नाम आज है; किन्तु उसको मोक्ष नहीं मिला। यदि अपने अन्तर की सफाई रखे और ध्यान करे तो उसको मोक्ष मिलता है।

पाँच पापों से बचो । सन्तों ने लोगों को मोक्ष-प्राप्ति का ऐसा सरल उपाय बताया है कि लोग संसार में हैरान न हो। किसी को बहुत पैसा है, दान देता है, कुआँ बनाता है, पोखर बनाता है, मन्दिर बनाता है, लेकिन जिसके पास पैसे नहीं हैं, वह नहीं कर सकता है। लेकिन दान देने के सम्बन्ध में ऐसा जानना चाहिए कि यदि कोई लखपति है और कोई एकदम गरीब है, यदि अपनी-अपनी शक्ति के अनुकूल दोनों दान देते हैं, यानी लखपति बहुत देता है और एक गरीब अपनी शक्ति के अनुसार थोड़ा ही देता है; तो दोनों बराबर हैं। किन्तु यह तो बाहर की बात है, असली बात है अपने शरीर को, अन्तःकरण को पवित्र रखो। ध्यान करो तो मोक्ष मिलेगा, सारे दुःखो से छूट जाओगे।

(भंगहा, कटिहार १.७.१९५५ ई०, प्रातःकाल)

३. ईश्वर-प्राप्ति के लिए गुरु-ज्ञान चाहिए

प्यारे लोगो !

यह बात निर्विवाद है कि शान्ति बाहर की चीजों में नहीं है। शान्ति असल में अपने अन्दर में है। मन शान्त है, बुद्धि शान्त है, तो शान्ति है। मन में संकल्प-विकल्प होता रहता है, बुद्धि में तर्क-वितर्क होता रहता है। इन दोनों को चुप कर दो, लेकिन मन-बुद्धि-ये दोनों शरीर के ऊपर लगे हुए नहीं हैं, शरीर के अन्दर हैं, इन दोनों को चुप कर दो। लेकिन यह कोई आसान काम नहीं है, कठिन काम है।

आप अभी जगे हुए हैं। बाहर की वस्तुओं को देखते हैं। आप सो जाएँ, स्वप्न में आ जाएँ, तो वे ही सब चीजें जानने में आवेंगी, जो आपने जागने की अवस्था में देखी है। जागने में और सपनाने में बुद्धि चुप नहीं होती और मन भी चुप नहीं होता है। इससे आगे आप बढ़ते हैं, तो गहरी-नींद में जाते हैं, तो बाहर की सब चीजें भूल जाते हैं। आपको कोई ज्ञान नहीं रहता है। जगने पर इतना मालूम होता है कि बहुत नींद से सोया। सन्त लोग कहते हैं कि यह तो स्वाभाविक है, और भी आगे बढ़ो, जिसे तुरीयावस्था यानी चौथी अवस्था कहते हैं। यह सहज ही में होने योग्य नहीं है। सत्संग के द्वारा गुरु से ज्ञान पाकर अध्यात्म-ज्ञान को जानिये और गुरु का चुनाव कीजिए, जो आपको बतावें कि तीन अवस्थाओं से आगे कैसे बढ़ा जाय। यह गुरु कैसा हो ?

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निर्गुण कहै जो सगुण बिनु, सो गुरु तुलसीदास।।

यह गोस्वामी तुलसीदासजी की दोहावली में है। जो अज्ञानपद

को छोड़कर ज्ञान के पद में आ गया हो, असल में वही गुरु कहलाने योग्य है। अन्धकार में अज्ञानता रहती है, ज्ञान नहीं रहता है। जहाँ अन्धकार है, वहाँ कौन-कौन बैठे हैं, पता नहीं लगता। साधक कुछ ऐसा साधन करता है, जिससे अन्धकार से प्रकाश में जाता है। अन्दर में प्रकाश नहीं हो, तो आँख में रोशनी कहाँ से आती है ? यह कहिये कि बाहर की रोशनी देखने से आँख में रोशनी आती है, तो यह बात ठीक नहीं है। अपने अन्दर में जो प्रकाश है, उसमें जो रहता है, वह ज्ञान में रहता है। अन्धकार में रहनेवाला ज्ञान की बात नहीं जान सकता है। मैंने पहले ही गुरु की वन्दना की है—

बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

जिनका वचन सूर्यकिरण के समान मोहरूपी अन्धकार को दूर करे, ऐसे कृपालु गुरु नररुप में हरि होते हैं। ऐसा ही गुरु चाहिए और सत्संग भी चाहिए। गुरु से सीखना चाहिए कि क्या करें, क्या साधना करें? परमात्मा-ईश्वर सर्वसमर्थ हैं, वे कहाँ नहीं हैं? हमारे, आपके-सबके अन्दर हैं। लेकिन वे ज्ञान नहीं देते कि आवागमन के चक्र से कैसे छूटोगे? जानकार गुरु के द्वारा वे सिखलाते हैं। उनका यही नियम है।

जे सउ चन्दा उगवहिं, सूरज चड़हिं हजार।
एतै चानण होदिंआ, गुरु बिनु घोर अन्धार।।

यह गुरु नानकदेवजी कहते हैं। सौ चन्द्रमा उग जाएँ, हजारों सूर्य बाहर में उग जाएँ, लेकिन बिना गुरु के अंदर में अंधकार ही रहेगा। इसीलिए गुरु की आवश्यकता गुरुनानक साहब बतलाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं, जबतक गुरु नहीं तबतक तुम्हारे अंदर प्रकाश नहीं, और भवसागर से उद्धार नहीं। जितने विद्यालय हैं, सबमें किताबें रख दीजिए, कोई अध्यापक नहीं रहे, तो छात्रों को क्या ज्ञान होगा?

गुरु की महिमा बहुत है। बाहर में शरीरधारी गुरु की बड़ी महिमा है। लेकिन गुरु गुरु हो, गोरु नहीं। जिस विद्या को जो सिखलावें, उसमें भी वे विशेष ज्ञानवान हों। यह सन्तों की विद्या ईश्वर की प्राप्ति-साक्षात्कार करानेवाली है। ईश्वर की प्राप्ति कैसे होगी? इसके लिये गुरु-ज्ञान की जरूरत है।

ईश्वर-पाने के लिए बाहर कहीं जाने की जरूरत नहीं है। भगवान श्रीराम ने वाल्मीकिजी से पूछा था कि मैं कहाँ रहूँ। वाल्मीकिजी ने कहा कि आप कहाँ नहीं हैं, सो कहिए। वाल्मीकिजी के सामने प्रत्यक्ष-रूप में भगवान श्रीराम मौजूद थे। फिर भी वे कहते हैं–

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।।

–रामचरितमानस

सर्वव्यापक-तत्त्व को यहाँ स्वरूप कहा है। जो आप स्वयं हैं वही आपका स्वरूप है। आप शरीर नहीं हैं, शरीर में आप रहते हैं। उसी को आत्मा कहते हैं। उसे आत्म-दृष्टि से देखना होता है। जो आत्म-दृष्टि का अभ्यास करता है, तब उसको आत्म-दर्शन होता है, तभी परमात्म-दर्शन भी होता है। यही सन्त लोग बतलाते हैं। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं–

नर तन भव वारिधि कहँ बेरो।

संसार-सागर को पार करने के लिये मनुष्य-शरीर नाव है-बेड़ा है। मनुष्य-शरीर पाकर ईश्वर-भजन कीजिए, सत्संग कीजिए और एक बात, जो गुरुनानक देवजी महाराज ने कही है, उसे भी याद रखिए–

सूचै भाड़े साचु समावै, विरले सूचाचारी।'

मन की पवित्रता शरीर के स्नान से नहीं होती है; सत्संग और साधन, से होती है। इसलिए सबको चाहिए कि सत्संग करना, गुरु से यत्न जानना और नित्यप्रति समय बाँट-बाँटकर भजन करना। भोजन का समय, आराम का समय, रोजगार का समय, साधना का समय इस प्रकार बाँट-बाँटकर भजन करते रहेंगे, तो कभी-न-कभी कई जन्मों में ईश्वर को पा लेंगे। भक्ति का संस्कार आपके साथ जन्म-जन्मान्तर रहेगा। सन्त कबीर साहब ने कहा है–

भक्ति बीज बिनसै नहीं, जो युग जाय अनन्त।
ऊँच नीच घर जन्म लै, तउ सन्त को सन्त।।
भक्ति बीज पलटै नहीं, आय पड़े जो चोल।
कंचन जो विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल।।

यह साधन करते-करते होगा। शान्त-भाव से नित्यप्रति कुछ-न-कुछ सत्संग अवश्य करते रहें। कोई वक्ता न हो तो सन्तवाणी पढ़ें, उसी का सत्संग में पाठ करें। यही थोड़ा-सा कह दिया।

(काजीचक, भागलपुर १५.१.१९८० ई0,)

४. ईश्वर से ही माँगो, किसी देव से नहीं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

मनुष्य-जीवन में धर्म ही जीवन है। जिस मनुष्य के जीवन में धर्म-ज्ञान नहीं है, उसका जीवन यदि पाशविक कहा जाय तो कुछ अति-उक्ति और हानि नहीं, क्योंकि पशु धर्म का ज्ञान नहीं रखते। धर्म कर्म से होता है, बिना कर्म के धर्म नहीं होता। परमात्मा ने मनुष्य को कर्म करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया है, फल के लिये नहीं। कर्म करने के लिए परमात्मा ने बुद्धि दी है, असत् और सत् का निर्णय कर कर्म करने के लिए। इसी के लिए विद्याभ्यास और सत्संग है। पशु के लिए विद्याभ्यास और सत्संग कहाँ है? मनुष्य के लिये बड़े-बड़े विद्यालय हैं। मनुष्य विद्याभ्यास और सत्संग से अपनी बुद्धि को परिमार्जित कर लें। बुद्धि को सात्विक, राजस और तामस में रख सकते हैं। बुद्धि स्वाभाविक ही इन तीनों में बरतती है। लोगों की बुद्धि सात्विकभाव में कम रहती है, रजोगुण और तमोगुण में अधिक रहती है। सात्विक में शुद्ध विचार होता है, राजस में चंचलता और तामस में उलटा विचार होता है; प्रमाद और आलस्य-सुस्ती होती है। राजस और तामस; इन दोनों से सात्विक उत्तम है। विद्याभ्यास और सत्संग से यद्यपि बुद्धि को बल मिलता है, फिर भी मन को अपने अन्दर ऐसे स्थान पर रखो जहाँ राजस तामस न रहे। एक तरफ रखने से राजस और दूसरी तरफ रखने से तामस में रहेगा। बीच में रखो तो सतोगुण में रहेगा। उन दोनों को इड़ा और पिंगला कहते हैं। जो यौगिक-शब्द जानते हैं, वे समझ गये होंगे। इड़ा-पिंगला में राजस-तामस में बुद्धि रहती है और सुषुम्ना में सात्विकता में बुद्धि रहती है। विद्याभ्यास, सत्संग और यौगिक-साधना; तीनों करो तो

सात्विक-बुद्धि में जमे रहोगे। तब असत् और सत् का ठीक-ठीक निर्णय कर सकते हो। सात्विक-वृत्ति में रहते कर्म करो तो वह धर्म होगा, जिससे यहाँ और परलोक दोनों जगह सुखी रहोगे। यहाँ सुखी और परलोक में दुःखी वह राजस-कर्म का फल है। यहाँ का सुख असल में सुख नहीं है। यहाँ दुःख मिश्रित सुख पाते हैं। यह चंचल-सुख राजस लोगों को मिलता है। जिस कर्म से यहाँ और परलोक, दोनों में दुःख पाते हैं, वह दुष्ट-कर्म तामस का फल है। जिस काम से परलोक-हलोक में सुख मिलता है और अन्त में मोक्ष मिलता है, वह सात्विककर्म का फल है। कुछ ऐसे सात्विक-कर्म हैं, जिनसे इस संसार और परलोक में सुखी रहो। ऐसे भी सात्विक-कर्म हैं, जिनसे यहाँ कुछ कष्ट मालूम होता है, जैसे दवा कड़वी मालूम होती है, परन्तु आगे में सुखी होता है। लोग ऐसा कर लेते हैं कि वे सुख को भी नहीं सह सकते, कुछ-से-कुछ कर लेते हैं, लेकिन दुःख को तो रा-रोकर भोग लेते हैं। विद्या, सत्संग और सद्गुरु की बताई यौगिक-क्रिया, इन तीनों को करो।

प्रत्येक व्यक्ति अपने को धार्मिक जानने में अच्छा समझते हैं। कोई धार्मिक-सिद्धान्त नहीं जानकर धार्मिक बनना चाहे तो उसकी आशा-ही-आशा रहेगी, आशा पूरी नहीं होगी। इसलिए धर्म की परिभाषा जानो। धर्म में पहली बात यह है—ईश्वर में अडिग-विश्वास। जिस धर्म में ईश्वर का विश्वास नहीं, वह धर्म ऐसा है जो विषाक्त है, जो देखने मात्र का शुभ है, लेकिन वह अशुभमय है। इसलिये ईश्वर की स्थिति का और उसके स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए, ईश्वर-स्तुति होनी चाहिए। स्तुति से उसके स्वरूप और उसकी स्थिति का ज्ञान होता है। इससे श्रद्धा होती है। श्रद्धा से प्रेम होता है। ईश्वर

का प्रेमी धर्म से विचलित नहीं होता।

मनुष्य की इच्छा बराबर कुछ-न-कुछ माँगने की रहती है। किसी भी चीज को पाकर कोई तृप्त नहीं हो सकता। जिसको ईश्वर की प्राप्ति हुई, उन्होंने कहा-ईश्वर की प्राप्ति में तृष्णा जाती रहती है और इच्छाओं का नाश होता है। इसलिए जो माँगो ईश्वर से माँगो। पहले तो माँगो ही नहीं, क्योंकि गौ अपने बच्चे को दूध पिलाती है, माता अपने बच्चे को बिना माँगे दूध पिलाती है। ईश्वर पर विश्वास करो, ईश्वर सब कुछ देंगे। यदि बिना माँगे मन नहीं माने तो एक ईश्वर से ही माँगो, किसी देव से नहीं, क्योंकि उस देव को उस ईश्वर से ही शक्ति मिली है।

सौ बरसा भक्तीं करै, एक दिंन पूजै आन।
सो अपराधीं मानवा, पड़े चौरासीं खान।।

—कबीर साहब

पात पात कै सींचवो, बरीं-बरीं के लोन।
तुलसीं खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु को न।।
देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया विवश विचारे।
तिनके हाथ दास तुलसीं प्रभु, कहा अपुनपो हारे।।

—गोस्वामी तुलसीदास

देवता को, संसार के लोगों को जो शक्ति मिली है, ईश्वर की ओर से ही। लोग पुरुषार्थ करते हैं, जो मिलता है, वह ईश्वरप्रदत्त है। जो पुरुषार्थ नहीं करे और उसको कुछ मिले, कैसा न्याय है ? ईश्वर से वह माँगो जो और कोई दे न सके। ईश्वर से वह माँगों, जिससे ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग मिले। मार्ग में जो चिह्न मिलना चाहिए, सो मिले। इसलिए ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना करो-बाद में उपासना करो।

उपासना में जप और ध्यान करने के लिए लोग कहते हैं। इन दोनों के भेदों को जानना चाहिए। जप और ध्यान में जो स्थूलता और सूक्ष्मता है, उसको भी जानो। किसी रूप को देखकर उसे मन में बनाना ही पूरा ध्यान नहीं है। ध्यान और भी है-'ध्यानं निर्विषयं मन:'। संतों ने बताया है कि दो ही चीजें-एक प्रकाश और दूसरा शब्द। साधकों को ये दोनों सहारे ईश्वर की ओर से मिलते हैं। उपासना ठीक-ठीक जानो और करो। जैसे एक अक्षर जानने के लिये गुरु की आवश्यकता होती है, उसी तरह इस अध्यात्म-ज्ञान के सिखलानेवाले गुरु की भी आवश्यकता होती है और इनकी बड़ी महिमा है। कहीं-कहीं इनको ईश्वर के तुल्य कहा गया है और कहीं-कहीं ईश्वर से भी बढ़कर। ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं हो सकता। लेकिन ईश्वर स्वयं प्रकट नहीं होते, सन्त लोग प्रकट होकर ईश्वर का ज्ञान बताते हैं, इसलिए ईश्वर से बड़े कहे जाते हैं।

मैं कह रहा था कि उपासना के लिए दो पदार्थों का सन्तों ने बहुत उपदेश दिया है। वे हैं-प्रकाश और शब्द। वे शब्द और ज्योति बाहर के नहीं, तुम्हारे अन्दर हैं। ठीक-ठीक उपासना करो, तुम्हारे अन्दर में ये दोनों मिलेंगे। संसार में ज्योति नहीं रहे तो संसार नहीं रहे। ज्योति रहे और बादल के कारण अन्धकार ही अन्धकर हो तो सभी लोग अन्धे जैसे काम करेंगे। फिर कितनी गलती और कितने दुष्ट-कर्म हो जाएँगे? इससे संसार भ्रष्ट हो जाएगा। ज्योति को बिल्कुल हटा लें तो सौरमंडल समाप्त हो जाएगा। शब्द से ही विद्याभ्यास किया जाता है। जन्मते ही आप शब्द करते हैं, तो आप जीवन में हैं, जाने जाते हैं। छोटे-बड़े सभी काम शब्द से होते हैं। सभी गूँगे हो जायँ तो क्या काम करेंगे! शब्द से ही काम करते हैं। जब गति वा कम्प होता है तो शब्द अवश्य होता है। गति और कम्प नहीं हो तो शब्द नहीं हो। किसी

की घटती और बढ़ती शब्द से होती है। हमारे दार्शनिक और वैज्ञानिक भी इसी बात को कहते हैं। सन्त दरिया साहब कहते हैं—

'साधो गति में अनहद बाजे'।

डॉक्टर कान में यंत्र लगाकर छाती वगैरह को जाँचते हैं- शब्द ठीक-ठीक होता है या नहीं? नाड़ी चलती है, इसमें भी गति है। शब्द कम्पमय और कम्प शब्दमय होता है। सृष्टि के आदि में प्रथम कम्प हुआ, कम्प का सहचर शब्द अवश्य हुआ। कम्प और शब्द को अलग-अलग नहीं कर सकते। शब्द में अपने उद्गम-स्थान पर खींचने का गुण होता है। जिसको ओ३म्, रामनाम, सत्नाम आदि कहते हैं। यह सबके अन्दर-अन्दर है और सृष्टि में भी है। लेकिन जो अपने को अपने अन्दर नहीं रख सकता, बहिर्वृत्ति में रखता है, वह इसको नहीं जान सकता। जो अन्तर्वृत्ति रखता है, वह इसको पहचानता है ।

अक्षरं परमोनादः शब्द ब्रह्मेति कथ्यते। **योगशिखोपनिषद्**

यही गोस्वामी तुलसीदासजी का निर्गुण रामनाम है।

बन्दउँ रामनाम रघुवर को। हेतु कृषानु भानु हिमकर को।।
विधि हरिहर मय वेद प्राण सो। अगुण अनूपम गुण निधान सो।।
'शब्द तत्तु वीर्ज संसार। शब्द निरालमु अपर अपार।।
शब्द विचारि तरे बहु भेषा नानक भेदु न शब्द अलेषा।।
शब्दै सुरति भया प्रगासा। सभ को करै शब्द की आशा।।
पंथी पंखी सिऊँ नित राता। नानक शब्दै शब्दु पछाता।।
हाट बाट शबद का खेलु। बिनु शब्दै क्यों होवै मेलु।।
सारी स्रिष्टि शब्द कै पाछै। नानक शब्द घटै घटि आछै।।'

—गुरुनानक देव

कबीर साहब कहते हैं—

साधो शब्द साधना कीजै।
जेहिं शब्द से प्रगट भये सब, सोई शब्द गहिं लीजै।।

दूसरे देश के 'लोग भी मानते हैं—'In the beginning was the word, the word was with God and the word was God.' अर्थात् सृष्टि के आदि में शब्द था, वह शब्द ईश्वर के साथ था और शब्द ही ईश्वर था।

लोगों का विश्वास है कि क्राइस्ट इस देश में आकर बहुत दिनों तक रहे थे। मुहम्मद साहब भी यहाँ आकर रहे थे। शब्द वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक, दोनों प्रकार के होते हैं। इनके अतिरिक्त प्राणमय, इन्द्रियमय और मनोमय; इन तीनों के भेद को भी जानिये। बाहर के वर्णात्मक में राम, शिव, गॉड (God), अल्लाह आदि कहते हैं।

नाम जपते-जपते ईश्वर की ओर ख्याल होता है, यह बाहर का शब्द है। बाहर के ध्वन्यात्मक शब्द से ईश्वर की पहचान नहीं होती। अन्दर के ध्वन्यात्मक में भी पहले ईश्वर की पहचान नहीं होती। नाद-साधना करते-करते अन्त में निर्गुण रामनाम 'ओ३म्' को पाता है, तब ईश्वर की पहचान होती है। वह अकथनीय है। केवल अन्तर्ध्यान से ही जाना जाता है। केवल वर्णात्मक पर जोर लगाकर अन्दर के ध्वन्यात्मक को नहीं जानना अपने में ज्ञान की कमी रखनी है। जानिये और साधन कीजिए।

(मनोहर उच्च विद्यालय, सहरसा, २.४.१९६३ ई0)

५. माया में सुख नहीं

प्यारे लोगो !

ज्ञानियों ने कहा है कि यह संसार ईश्वर की माया है। ईश्वर की माया को सब लोग पकड़े हुए हैं। सब इस माया के अन्दर में सुख पाना चाहते हैं। परन्तु कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो ईश्वर की माया को पकड़ना पसन्द नहीं करते। ईश्वर को ही पकड़ लेना पसन्द करते हैं, परन्तु दोनों की एक ही चाह है कि सुख हो। ईश्वर की माया को पकड़कर सुख पाना चाहते हैं। उसी तरह ईश्वर को पकड़कर भी सुख पाना चाहते हैं।

जो माया को पकड़कर सुख पाना चाहते हैं, वे नहीं समझते हैं। जो ईश्वर को पकड़ कर सुख पाना चाहते हैं, वे समझते हैं। माया उसको कहते हैं, जो जिस तरह मालूम हो उसी तरह नहीं रहे। सुखदाई मालूम पड़े, लेकिन है दुखदाई। उसकी स्थिति मालूम पड़े, लेकिन उसकी स्थिति है नहीं। और इसकी उपमा देकर कहते हैं—

रजत सीप महँ भास जिमि, जथा भानुकर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सो, भ्रम न सकइ कोउ टारि।।
एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

मतलब यह है कि सीप में चाँदी का भास होता है, लेकिन चाँदी है नहीं। इसी तरह ईश्वर की माया भासमान है। उसकी स्थिति जान पड़ती है, परन्तु स्थिति है नहीं। केवल भ्रम से ही ऐसा मालूम होता है। धूप की चकमकी में, खासकर रेगिस्तान में बालू पर बड़ी चकमकी होती है। इससे जैसे पानी मालूम पड़ता है, पानी का हिलोर मालूम

पड़ता है, लेकिन पानी है नहीं। इसी तरह ईश्वर की माया है-मालूम पड़ती है; लेकिन है नहीं। इसको जानना चाहते हो तो अन्दर घुसो तो पता लगेगा कि स्थिति इसकी नहीं है, स्थिति ईश्वर की है। जो ऐसी चीज है, उसको पकड़कर यदि कोई सुखी होना चाहते हैं, तो उसको पकड़कर कैसे सुखी हो सकते हैं? जो ऐसा मालूम पड़ता है कि है, लेकिन है नहीं, तो उसका सुख कैसा होगा? सुख मालूम पड़ता है, लेकिन सुख है नहीं।

भोजन करते हैं; स्वाद अच्छा लगा, सुख मालूम हुआ, भोजन करना छोड़ दिया, भोजन की रुचि नहीं है, तब जो सुख भोजन करते समय होता था, सो रहा नहीं। इसी तरह संसार का सुख है। स्वाद-सुख के लिये भोजन की ओर लोग चलते हैं और भोग करते चले जाते हैं, कभी तृप्ति नहीं। सब दिन इच्छा बनी रहती है—तृष्णा बढ़ती जाती है। सुख पाने भोजन के पीछे चले थे; लेकिन मिलता दुःख है। यह एक मिसाल कहा। इसी तरह तलाश करनी चाहिए कि सुख है कि नहीं?

माया के पदार्थों में खोजने पर सुख नहीं है। माया के अतिरिक्त परमात्मा या ईश्वर बच जाते हैं। इनकी निस्बत जो ख्याल करते हैं तो कहते हैं कि वे सुख-स्वरूप हैं, शान्ति-स्वरूप हैं। उन शान्ति-स्वरूप को ही पकड़ा जाय। माया की स्थिति नहीं है, ईश्वर की स्थिति है। क्योंकि संसार में सब पदार्थों पर ख्याल करने पर ऐसा मालूम होता है कि सभी सान्त है। ईश्वर की माया इन्हीं सान्त-पदार्थों में बँटकर है। यह बाँट लोगों को इन्द्रियों में मालूम पड़ता है। जिभ्या में रस का स्वाद, नासिका में गंध का स्वाद, कान में केवल मीठे-शब्द का स्वाद

वा कडुवा-शब्द का कडुवा-स्वाद, नेत्र में केवल रूप का स्वाद, ये बँट—बँट कर स्वाद मालूम पड़ते हैं। रूप-रंग देखो तो और भी बाकी रह जाता है। रूप भी भिन्न है। इसी तरह बाजे-गाजे का शब्द है। किसी में तृप्ति नहीं। इच्छा बढ़ती जाती है, तृष्णा बढ़ती जाती है। इसी तरह घ्राण-शक्ति में है, तृप्ति नहीं होती। त्वचा में नाना प्रकार का स्पर्श हो, लेकिन स्पर्श-सुख भी शान्तिदायक नहीं। वहाँ भी तृष्णा बढ़ती जाती है। इसके वास्ते लोगों की दुर्दशा-दुर्दशा हो गई है। माया के अन्दर यही सुख है-रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द। और तो जान पाते नहीं।

ज्ञानी लोग यह देख कर बताते हैं कि आगे बढो। परमात्मा की माया ऐसी ही है। परमात्मा को पाओ तो परमात्मा में जो सुख है, उसको पाओगे। परमात्मा में जो नित्यानन्द है-परमानन्द है, वही आप को भी मिलेगा, परम-तृप्ति होगी। भक्त सूरदासजी ने कहा है—

परम स्वाद सबहीं जु निरन्तर, अमित तोष उपजावै।
मन वाणीं को अगम अगोचर, सो जानै जो पावै।।

वह स्वाद कैसा है? किसी को पता नहीं। वह स्वाद जबसे लगता है कभी छूटता नहीं। परन्तु यह इन्द्रिय के द्वारा जानने योग्य सुख नहीं है। केवल आत्मा के द्वारा ही जानने योग्य है। ईश्वर का दर्शन, ईश्वर की प्रत्यक्षता, ईश्वर में जो आनन्द है, सभी आत्म-गम्य है, इन्द्रिय-गम्य नहीं है। यह बात ज्ञानी लोग कह कर समझा देते हैं। इसलिये कहते हैं कि उधर चलो। ईश्वर की माया में लगे नहीं रहो। ईश्वर की प्राप्ति में ऐसी तृप्ति होगी, कि दुःख का पता नहीं रहेगा। संसार में किधर चलो-उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम? संसार में किसी

तरफ जाओ, इन्द्रिय-ज्ञान में ही रहना पड़ेगा। इन्द्रिय-ज्ञान में कभी तृप्ति होती नहीं। ज्ञानी लोग कहते हैं अपने अन्दर जाओ। अपने अन्दर में हो सही, लेकिन जितने अन्दर में हो उससे और अन्दर में जाओ। जैसे बाहर संसार विशाल है, उसी तरह अपने अन्दर का संसार विशाल है।

जाग्रत में रहते हो, स्वप्न में रहते हो, सुषुप्ति में रहते हो, इनसे ऊपर जाओ। तीन अवस्था में सोया रहता है। सोने की अवस्था में अपनी चीज को नहीं जानता, अपने को नहीं जानता। इसलिए चौथी अवस्था में चलो। तब पता लगेगा कि ब्रह्मानन्द उसका स्वभाव ही है। तृष्णा से छुड़ाकर, पूर्ण सन्तुष्ट बनाकर रखता है। ऐसा सुख ईश्वर की खोज में चलते-चलते ईश्वर को पाकर होगा। अपना भी ज्ञान नहीं है। अपनी भी खोज अपने अन्दर करनी होगी।

सबको प्रत्यक्ष है कि शरीर नाशवान है। शरीर छूटता है, इसको जला देता है; गाड़ देता है। यह शरीर पानी से बना है यानी पानी से पिण्ड बना है। फिर बचपन और जवानी आई, वयस बढ़ा। वयस के अनुकूल शरीर बढ़ता गया। सुन्दरता आती गई और फिर वह सुन्दरता नहीं रहती। फिर ऐसा होता है कि जैसे पहले इसका पता नहीं था, वैसे ही पता नहीं रहता है।

हर एक को यह विदित है कि मैं अपने शरीर में हूँ। इसलिए अपने अन्दर खोज करो। अपने अन्दर रहकर ही आत्म-ज्ञान होगा। इसके लिये जो अन्दर धँसता है, वह जगता है। जगना ऐसा होता है कि तीन अवस्था से ऊपर उठता है। तीन अवस्थाओं के स्थान आँख से नीचे

भिन्न-भिन्न स्थानों को योगियों ने प्रत्यक्ष कर देखा है और लोगों को बताया है। इसका पता योग के ग्रन्थ में है। साधक को ग्रन्थ के अनुकूल अपने आप होता है। अन्दर में जो आँख से ऊपर उठता है, वही यथार्थ-ज्ञान पाता है। ऊपर की ओर उठना वह काम नहीं है जो संसार में है। इसमें तो यह काम है कि अपने को फैलाव से सिमटाव में लाओ। यही चित्तवृति का निरोध है। इतना समेटो कि फिर उससे अधिक सिमटाव नहीं हो। इतना सिमटाव कि एकविन्दुता आ जाए। इसकी बड़ी महिमा है। यह तीन अवस्था से ऊपर ले जाता है।

सिमटी चीज ऊपर जाती है और फैली चीज नीचे गिरती है। इसलिए चित्तवृत्ति का निरोध करते हैं। पहले जप करते हैं। किसी रूप का ध्यान करते हैं। अच्छे गुरु के ज्ञान से एकविन्दुता प्राप्त करने का यत्न जानते हैं। तब पूर्ण सिमटाव होता है। एक विन्दुता होने पर तब वह जागता है। वह देखता है कि—

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवइ निंद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।
सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहिं दशा हींन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

जो इस दशा को पाता है, वही हरि-सुख का पता पाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने एक पद्य में कहा है—

तींन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त।
मन क्रम वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनन्त।।

भक्त सूरदासजी ने कहा है—

अपुनपौ आपुन हीं में पायो।

सन्त कबीर साहब कहते हैं—

परमातम गुरु निकट विराजै, जागु जागु मन मेरे।

परमात्म-गुरु अपने अन्दर हैं। तब इससे निकट और क्या होगा ? तीन अवस्था में रहकर कितना भी ज्ञान बक जाओगे, कितना भी ज्ञान पढ़ लोगे, प्रत्यक्षता नहीं होगी। चौथी अवस्था में जाओ। इसी को कबीर साहब ने कहा है-जगो, परमात्मा प्रत्यक्ष होंगे। इसमें बात है कि कब काल ग्रस लें, ठिकाना नहीं है। इसलिए शीघ्र सद्‌गुरु की खोज करके उनके चरण में लगो। ध्यान करो; माया की ओर से छुटाव होगा। पूर्णता की ओर चलकर, पूर्णता में पहुँच कर पूर्ण होओगे।

वह पूर्णता क्या है? परमात्मा। चाहिए सद्‌गुरु, सत्संग। सद्ज्ञान जो जानते हैं, सद्‌भाव की युक्ति जानते हैं। अपने साधन करते हैं, औरों को उसमें लगाते हैं, ऐसे को सद्‌गुरु कहते हैं। ऐसे की शरण में जाओ, साधन करो। साधन ऐसा कठिन नहीं कि लोग नहीं कर सकें। सरल काम है, ख्याल लगाना सभी से होगा। कैसे ख्याल लगावें, गुरु से जानो। जो इन बातों को जानते हैं, उनको लोग ज्ञानी कहते हैं।

संयमी होकर रहो। जो संयमी होकर रहते हैं, वे संसार में भी सुखी होते हैं और ईश्वर की ओर बढ़ते-बढ़ते सुखी होते जाते हैं। ईश्वर को पाकर परम-सुखी हो जाते हैं। फिर संसार की कोई इच्छा नहीं रह जाती। चाहिए ऐसा सत्संग किया जाय। संयमित होकर रहना तप है। इसके लिए क्या करना होगा? पहली बात है-झूठ को छोड़ देना। दूसरी बात है—किसी किस्म की चोरी नहीं करनी। तीसरी बात है—व्यभिचार

नहीं करना। चौथी बात-नशा नहीं लेना। पाँचवी बात है—हिंसा नहीं करनी। इस सिलसिले में निरामिष-भोजी बनो। यह देश तो ऐसा है कि निरामिष-भोजी होकर रहना सरल है। संसार में ऐसा भी देश है जहाँ निरामिष होकर रहना कठिन है। आमिष में पाशविक-गुण रहता है। पाशविक-गुणों को बढ़ाने से अन्तस्साधना, ईश्वर में प्रेम होना असम्भव है। इसलिए ईश्वर के प्रेमी को पंच पापों से छूटकर रहना आवश्यक होता है। जो पंच पापों से छूटकर रहता है, संसार में वह पूज्य होता है। उसकी तृष्णा छूटती जाती है। लोभ-लालच छूटते जाते हैं। तब यह छूटने का जो लाभ है, सो होता है। न पैसा बहुत चाहिए, न अन्न बहुत चाहिये। अवगुणों को छोड़ता हुआ सद्गुणों को ग्रहण करते रहने से संसार में सुखी रहता है।

धर्म वह है जिससे इहलोक और परलोक, दोनों में सुखी रहा जाय। जो पंच पापों से छूट कर रहता है, वह उत्तम परलोक पाता है और अन्त में परमात्मा को भी पाता है । संसार की आसक्ति छूटती जाती है। ईश्वर-भजन में मन लगता है। विकारों से छूटनेवाला ईश्वर की ओर बढ़ता है। जो ईश्वर की ओर बढ़ता है, पापों से छूटता है। लोगों को चाहिए कि ईश्वर का भजन करें। संसार का काम छूटता नहीं। खेती, व्यापार, नौकरी करते हुए लोग ईश्वर-भजन करें। संयमित रहने से नौकरी में, खेती में, वाणिज्य-व्यापार में किसी में हानि नहीं। नित्य सत्संग करना चाहिए।

'बिनु सत्संग भगति नहिं होई।'

(थाना बिहपुर, भागलपुर, २७.१०.१९७० ई०)

६. यह शरीर भोग-विलास के लिए नहीं

प्यारे लोगो !

यद्यपि लोग प्रत्यक्ष-रूप में ईश्वर को नहीं देखते हैं, परन्तु विश्वास रखते हैं कि ईश्वर है। यह अन्धी श्रद्धा मात्र नहीं है। विचार संग देता है, जो अन्धी श्रद्धा नहीं रहने देता। विचार भी एक प्रकार का देखना है। इस संसार का आधार भी कुछ होना चाहिए। हम देखते हैं कि पृथ्वी पर जो कुछ है, सबका आधार है। बिना पृथ्वी के गाछ, जंगल, पहाड़ कुछ नहीं रह सकता। पृथ्वी के बिना उसका आधार कुछ रह नहीं सकता, पृथ्वी का भी आधार है। जैसे आप बहुत-से तारों को निराधार देखते हैं। सभी तारे निराधार नहीं हैं। यह पृथ्वी भी एक तारा है। यह शून्य में है। पृथ्वी, चन्द्र, तारे का आधार सूर्य है। बिना सूर्य के ये नहीं रह सकते। सूर्य का भी आधार है।

जो सबका आधार है, वह परमात्मा है। सबका आधार कुछ नहीं है, यह माननेयोग्य नहीं है। ज्ञानियों ने कहा है कि ईश्वर को तुम अपने से पाओगे। जैसे हमारी आँख खराब हो जाय, तो हम संसार की किसी चीज को नहीं देख सकते हैं। कोई चीज नहीं देखने के कारण संसार में कोई चीज नहीं है, यह बात नहीं। जिनको आँख है, वे देखते हैं। जिसके द्वारा हम ईश्वर को पाएँगे, वह है चेतन-आत्मा। परमात्मा को हाथ से कोई पकड़ नहीं सकता। भीतर में मन, बुद्धि हैं, ये भी बाहर के पदार्थ पर आश्रित हैं। मन-बुद्धि भी ईश्वर को नहीं जान सकते। इनके परे चेतन-आत्मा है। इसी से ईश्वर को जाना जाता है। इसी के कारण इन्द्रियों को ज्ञान है। उसका निजी काम ऐसा है कि मन, बुद्धि आदि को छोड़कर जो होता है तब जो मिलता है, वह है ईश्वर। जो इस बात को नहीं जानते, वे इसी आँख से देखने, इसी हाथ से पकड़ने की चीज को ईश्वर मानते हैं। ऐसा विचार निश्चित कर लेने

पर हम जानें कि उसको हम कैसे पावेंगे।

हमारा फँसाव संसार के पदार्थों में हो गया है। यह फँसाव छूटे, अपने तईं में रहें, तब ईश्वर को पहचानेंगे। अपने शरीर का ज्ञान सबको है; लेकिन अपने तईं का ज्ञान नहीं है। जैसे शरीर को चीन्हते हैं, वैसे ही अपने को चीन्हें-यह आवश्यक है। जबतक फँसाव नहीं छूटेगा, तबतक ईश्वर को नहीं जान सकते। जानना दो प्रकार का है-एक है परोक्ष और दूसरा है अपरोक्ष। श्रवण—ज्ञान और मनन—ज्ञान यह अप्रत्यक्ष —ज्ञान है। इसी को शास्त्रीय भाषा में परोक्ष—ज्ञान कहते हैं। इससे पहचान तो नहीं होती; लेकिन निर्णय होता है। प्रत्यक्ष—ज्ञान के लिए क्या करो? इसीलिए साधु, सन्त, महात्मा कहते हैं कि भक्ति का अवलम्बन करो। दूसरे कहते हैं कि योग का अवलम्बन करो। जहाँ योग है, वहाँ भक्ति है। जहाँ भक्ति है, वहाँ योग है। योग कहते हैं मिलाप को। भक्ति कहते हैं सेवा को। बिना सेवा के मिलाप नहीं। किसी की आवश्यकता पूरी करो, यह उसकी सेवा है। किसी को धन की आवश्यकता है, उसको धन दे दो, तो उसकी सेवा होगी। किसी का शरीर रुग्न हो गया, तो उसकी दवा—दारु करते हो, यह उसकी सेवा है।

ईश्वर को कोई आवश्यकता नहीं। उसकी क्या सेवा करोगे ? लोग गंगा-सेवन करने आते हैं; गंगा को फूल चढ़ाते हैं। यह गंगा की सेवा है। पानी पीते हैं, टहलते हैं, अपने घर से गंगा तक आते हैं, यह गंगा की सेवा है। इसी तरह जिधर चलकर ईश्वर मिलेंगे, उधर चलना ईश्वर की भक्ति है। गंगाजी का जल पाते हैं, वायु पाते हैं, इससे प्रत्यक्ष-लाभ होता है। इसी तरह जो ईश्वर की ओर चलते हैं, वे प्रत्यक्ष-लाभ पाते हैं। औषधि खाते हैं, तो औषधि—सेवन है। ईश्वर-सम्बन्धी जो अनुभूति होती है, यह ईश्वर-भक्ति की सूक्ष्म-बात

है। जिधर वे मिलें, उधर चलो। बाहर में इन्द्रियों के साथ रहेंगे। ईश्वर का ज्ञान इन्द्रियों के ज्ञान में रहने से नहीं होता, अन्दर चलिए। इन्द्रियों से छूटना होगा। आप अन्दर में चलकर, मन-बुद्धि से बढ़कर अपने ज्ञान में आ जाएँगे, तब ईश्वर का ज्ञान होगा। जैसे-जैसे अन्दर में बढ़ेंगे, वैसे—वैसे अनुभूति होती जाएगी और आपको शान्ति मिलती जाएगी। इसी को ब्रह्म—पीयूष कहते हैं।

ब्रह्म पीयूष मधुर शीतल, जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृग जल रूप विषय, कारण निशिवासर धावै।।

ब्रह्म-पीयूष बाहर की वस्तु नहीं, अन्दर की है। जो कोई अपने को बहिर्मुख से अन्तर्मुख कर पाता है, उसी को ब्रह्म-पीयूष मिलता है। यह अन्तर्मुख चलना ईश्वर की भक्ति है। इसी को योग कहते हैं। इस योग में बताया गया है दायीं और बायीं धार यानी इड़ा-पिंगला, इन दोनों के बीच में रहो, तो चलते-चलते चले जाओगे। यइ शरीर खाने और मल-मूत्र त्याग तथा भोग-विलास के लिए नहीं है। इस शरीर को तुम ठाकुरबाड़ी और शिवालय बना सकते हो और विलासमय भी। विलासी-जीवन बन्धन का जीवन होगा और शिवालय तथा ठाकुरबाड़ी बनाने से ईश्वर की ओर जाओगे। इसका यत्न गुरु से जानो। घर-गृहस्थी में रहकर भी कर सकते हो और घर-गृहस्थी छोड़कर भी।

घर-गृहस्थी छोड़कर रहने की अपेक्षा घर-गृहस्थी में रहकर भजन करना अच्छा है। घर-द्वार छोड़ने से खाने की चिन्ता होगी। कहाँ जाओगे? घर-घर घूमोगे। खाने के लिए कष्ट होगा। संन्यास में भी और गृहस्थी में भी, दोनों तरहों से भजन करो। भजन तुरत ही समाप्त नहीं हो जाता। विद्या थोड़ा-थोड़ा पढ़ते-पढ़ते विद्वान होते हैं। विद्या का आरम्भ करो और उसको छोड़ दो, तो भूल जाओगे, गोया नष्ट हो जाएगी। लेकिन योग के बीज का नाश नहीं होगा। थोड़ा भी करोगे,

भूल जाओगे तब भी वह नष्ट नहीं होगा।

योग कोई भयावह चीज नहीं है। लोग कहते हैं-राम-राम भजो, हो गया, यह जपयोग है। यह भी ठीक है। यह आरम्भ की बात है। यह करने की मनाही कोई नहीं करता। इससे आगे भी जानिए और कीजिए। ईश्वर का ज्ञान इन्द्रियों में रखना भ्रम है। ईश्वर का ज्ञान इन्द्रियों से परे है। ईश्वर-स्वरूप का निर्णय होने पर ही ईश्वर के परोक्ष ज्ञान का आरंभ हो जाता है। लोग मोटी—मोटी बातों में उलझे हुए हैं। जहाँ मोटी-मोटी बात से काम चलता है, चलाओ, लेकिन ईश्वर को पाने के लिए मोटी-मोटी बात से काम नहीं चल सकता। इसके लिए मन का संकल्प-विकल्प छुटाना होगा। संकल्प-विकल्प छुटा हुआ मन पवित्र होता है। संकल्प-विकल्प छुटे हुए मन में राग-द्वेष नहीं होता। संकल्प-विकल्पवाला मन राग-द्वेष उत्पन्न करता है। लोग ईश्वर—स्वरूप को जानें, मार्ग को जानें, अवलम्ब को जानें और साधना करके दर्शन करें, इससे अन्तस्साधना में प्रेरण मिलेगा। जैसे खेत को जोतकर फसल बोते हैं और जबतक फसल न कटे, देख-रेख करते रहते हैं, इसी तरह शरीररूपी खेत में सत्संगरूपी फसल लगाते रहें, ऐसा करना चाहिए। सत्संग नहीं छोड़ना चाहिए। सत्संग-ध्यान करते रहो, कभी-न-कभी अपरोक्ष-ज्ञान भी होगा।

(सत्संग-मंदिर मनिहारी, कटिहार, ०४.०६.१९६६ ई0)

७. जीवन काल में मुक्ति प्राप्त कीजिए

प्यारे लोगो !

क्लेशों से छूटने के लिए मनुष्य को स्वाभाविक ही अन्त: प्रेरणा होती है। शरीर धारण करना ही क्लेशों का कारण है। किसी लोक में रहो, उस लोक में रहने योग्य शरीर धारण करके रहो। क्लेश से छुट्टी नहीं है। नरलोक को लोग प्रत्यक्ष देखते हैं और स्वर्गादि-लोकों के लिए पुराणों में पढ़ते हैं। सन्तों ने कहा कि ईश्वर की भक्ति करो। ईश्वर को प्राप्त कर लो, तो सभी शरीर से छुटकारा हो जाएगा, सभी लोकों से छुटकारा हो जाएगा और सभी क्लेशों से भी छुटकारा हो जाएगा। इसके लिए ईश्वर का भजन करो। भजन करने के लिए पहले युक्ति-भेद जानो, फिर उनसे मिल जाने का अभ्यास करो। यही योग और ज्ञान है इसको दृढता से जान लो कि ईश्वर की प्राप्ति देहयुक्त रहने से नहीं होता है। आवश्यकता यह है कि एक शरीर को छोड़ो, फिर दूसरे को, तीसरे को एवं प्रकार से सभी जड़-शरीरों को छोड़ो, तो ईश्वर की भक्ति पूरी होगी। जैसे आप जगन्नाथ जाना चाहें, तो रास्तों को, गाँवों को, नगरों को छोड़े बिना वहाँ नहीं पहुँच सकते इसी तरह सभी शरीरों को छोड़े बिना परमात्मा की पहचान नहीं हो सकती।

योग के नाम से लोगों को डरना नहीं चाहिए। ज्ञान को भी अगम्य न जानना चाहिए। योग मिलने को कहते हैं और ज्ञान जानने को कहते हैं। योग के बिना मिल कैसे सकते हैं और ज्ञान जाने बिना मिलेंगे किससे? हमलोग सत्संग करते हैं, यह ज्ञान का उपार्जन है और ध्यान करते हैं यह योग है। योग चित्तवृत्ति-निरोध को भी कहते हैं। आपलोगों ने सुना होगा कि हठयोग में बहुत आसन आदि लगाने पड़ते हैं। घर को छोड़े बिना नहीं होगा। जो पूर्ण वैरागी होगा ब्रह्मचारी

होगा, उसी से होगा; किन्तु सन्तों ने ऐसा नहीं कहा। सन्तों ने कहा है—हठयोग किये बिना भी ईश्वर की प्राप्ति होती है; किन्तु हाँ, संयमी होकर रहना होगा। तब गृहस्थ रहो या विरक्त रहो-दोनों से होगा। संयमी होने का आशय है मितभोगी होना। स्वल्पभोगी संयमी है। जो भोगों में विशेष आसक्त है, वह भोगी है। उससे संयम नहीं होगा। दो तरह से संयमी होते हैं—एक गृहस्थाश्रम से दूर रहकर और दूसरे गृहस्थाश्रम में रहकर स्वल्प भोगी होते हुए गृहस्थाश्रम में रहकर संतान-विहीन रहे, धन-विहीन रहे-ऐसी बात नहीं। संयम से रहे, अपना रोजगार करता रहे और संतान भी उत्पन्न करे। आप कहेंगे कि हम साधारणजन से यह संयम नहीं होगा, तो आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। आप के यहाँ ऐसे बहुत लोगों का इतिहास है, जो गृहस्थ रहते हुए, खेती करते-करते, मुंशी का काम करते-करते संत हो गये हैं।

कबीर साहब ताना-बाना करते-करते सन्त हो गए। आज कितना उनका नाम है, विद्वानों से पूछिए। प्रथम कक्षा से लेकर ऊँची कक्षाओं तक उनकी वाणी पढ़ायी जाती है। कबीर साहब ने दिखला दिया कि घर में रहकर अपना काम करते हुए भी लोग संत होते हैं। कबीर-पंथ के लोग उनका गृहस्थ होना नहीं मानते, किन्तु और लोग उनका गृहस्थ होना मानते हैं। खैर, जो हो। गुरुनानक देवजी के लिए तो यह प्रसिद्ध है कि वे गृहस्थ थे। उनके दो पुत्र थे। श्रीशंकराचार्य जी बिना गृहस्थ-जीवन बिताए सन्त हुए। किन्तु सर्वसाधारण के लिए कबीर साहब और गुरुनानक साहब का नमूना अच्छा है। आज भी मंदार पहाड़ के नजदीक श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्यालजी बड़े भारी विद्वान मौजूद हैं, जो बड़े संयमी हैं और साधु-संत से कम दर्जा नहीं रखते हैं।

आज जो राधास्वामी मत प्रचलित है। उसके लोग भी गृहस्थ

हैं। जो कोई कहे कि गृहस्थ से भजन-साधन नहीं होगा तो जानना चाहिए कि वे स्वयं इसको नहीं जानते हैं, अपने नहीं करना चाहते और न दूसरे को करने देने का उत्साह देते । इसलिए सब कोई ईश्वर का भजन कीजिए और शरीर रहते ही यानी जीवन-काल में ही उस परमपुरुष को प्राप्त कीजिए, मुक्ति-लाभ कीजिए। संतों ने कहा है कि—

जींवत मुक्त सोइ मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख-सुख भुक्ता हो।।
—कबीर साहब

संतों ने जीवनकाल में ही मुक्ति की मान्यता दी है। संत दादूदयालजी ने कहा है—

जींवत छूटे देह गुण, जींवत मुक्ता होइ।
जींवत काटै कर्म सब, मुकति कहावै सोइ।।
जींवत जगपति कौं मिलै, जींवत आतम राम।
जींवत दरसन देखिये, दादू मन विश्राम।।
जींवत मेला ना भया, जींवत परस न होइ।
जींवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोई।।
मूआँ पींछै मुकति बतावै, मूआँ पींछैं मेला।
मूआँ पींछे अमर अभे पद, दादू भूले गहिला।।

आपलोगों ने उपनिषद् के पाठ में भी सुना कि मरने पर जो मुक्ति होती है, वह मुक्ति नहीं है। आप कहेंगे कि गृद्ध शरीर छोड़कर भगवान के रूप को धरकर बैकुण्ठ चला गया, उसकी मुक्ति हो गयी, तो जानना चाहिए कि यह असली मुक्ति नहीं है। मुक्ति चार प्रकार की होती है, सालोक्य-मुक्ति, सामीप्य-मुक्ति, सारूप्य-मुक्ति और

सायुज्य-मुक्ति। ये चारों मुक्तियाँ असली मुक्तियाँ नहीं है। असली मुक्ति वह है जिसमें किसी प्रकार की देह नहीं रहे। उसी को ब्रह्म-निर्वाण भी कहते हैं। इसके लिए कोशिश कीजिए। एक शरीर में नहीं होगा, तो दूसरे-तीसरे किसी-न-किसी शरीर में अवश्य होगा।

भगवान श्रीकृष्ण की बात याद कीजिए, जो उन्होंने गीता में कही है- योग के आरम्भ का नाश नहीं होता, उसका उलटा परिणाम नहीं होता और वह महाभय से बचाता है। जिस जन्म में आपको स्वयं मालूम हो जाए कि यह जड़ है और यह मैं चेतन हूँ, उसी जन्म में आपको ब्रह्मनिर्वाण हो जाएगा। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो थोड़ा भी योग-ध्यानाभ्यास करेगा,तो शरीर छूटने पर वह बहुत दिनों तक स्वर्गादि सुखों को भोगेगा। स्वर्गसुख भोगने के बाद इस पृथ्वी पर किसी पवित्र श्रीमान् के घर में जन्म लेगा। अथवा योगी के कुल में जन्म लेगा और पूर्व-जन्म के संस्कार से प्रेरित होकर योगाभ्यास करने लगेगा और करते-करते कई जन्मों में मुझको प्राप्त कर लेगा और मुझमें विराजनेवाली शान्ति को प्राप्त कर लेगा। इस योगाभ्यास को बारम्बार करते रहो, कभी मत छोड़ो। किसी के बहकावे में मत पड़ो कि नहीं होगा। आरम्भ कैसे किया जायगा? इसके लिए संतों की वाणियाँ हैं-स्थूल-साधना से सूक्ष्मतम-साधना तक करने के लिए मोटा-जप, मोटा-ध्यान, फिर दृष्टि-साधन और अन्त में शब्द-साधन—ये ही चार बातें हैं। मरने का डर नहीं करना चाहिए। शरीर मरता है, आप नहीं मरेंगे। जिसको मरने की आदत हो गई है, वह मरने से क्यों डरेगा? इसीलिए कबीर साहब ने कहा—

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द।।

मरने का डर उसको है, जो बुरे-बुरे कर्मों को करता है, क्योंकि उसकी दुर्गति होती है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।'

—श्रीमद्भगवद्गीता ८/१०

प्रयाणकाल में अर्थात् मरने के समय अचल मन से भक्तियोग युक्त होकर अपने प्राण को दोनों भौओं के बीच में रखकर जो शरीर छोड़ता है, वह दिव्य परमपुरुष को प्राप्त करता है जिसको जीते-जी इसका खूब हिस्सक लगेगा, उसका कल्याण होगा। जीते-जी जो भावना होगी, मरने के समय वही होगी; जैसे जड़ भरत की हुई थी। हिरणी के बच्चे में उनकी आसक्ति थी, तो शरीर छूटने पर उनको हिरण का शरीर मिला। साधन-भजन की बात मन में बराबर लानी चाहिए, जो कहे कि हमको बाल-बच्चों की सेवा तथा अपने काम-धन्धों से फुर्सत नहीं है, हम भजन-ध्यान क्या करेंगे, तो मैं कहता हूँ कि आपको मरने की फुर्सत है? यदि आपको मरने की फुर्सत नहीं है, तो क्या मौत इसको मान सकती है? समय पर आपको मरना ही पड़ेगा। इसलिए सब कामों को करते हुए कुछ समय बचा-बचाकर ध्यानयोगाभ्यास भी किया कीजिए।

(सत्संग-मंदिर बरईचक, पाटम, मुंगेर, २६.०२.१९५५ ई0)

८. शांति अंदर में है

प्यारे लोगो !

मैं यह नहीं भूलता हूँ कि यहाँ क्या करने आया हूँ। सदा याद रखता हूँ कि जहाँ जाऊँ, वहाँ सन्तों के विचार का प्रचार करूँ। सन्तों का विचार सन्तों के नाम से ही समझिए।

शान्ति-प्राप्त किये महापुरुष को सन्त कहते हैं। इनका क्या विचार होना चाहिये? जो सुख उनको होता है, वही सुख सबको हो। इसलिए सभी कोई शान्ति को प्राप्त करें।

सन्तों ने बताया कि पहले संसार को देख लो, संसार की वस्तुओं में तुम तृप्त हो या नहीं? संसार की वस्तु किसी को कम, किसी को बेसी है, लेकिन संतुष्ट-तृप्त दो में से कोई नहीं है। तृप्ति कहाँ होगी ?

जहाँ शान्ति है। शान्ति बाहर की चीज नहीं है, अन्दर की चीज है। अन्दर का साधन इसीलिए सन्तों ने बताया है।

आँख बन्द करके देखो, अन्धकार होता है। उस अन्धकार में भी मन बाहर भागता है। अन्धकार में मन जहाँ बाहर की ओर भागता है, वहाँ से उसे हटाओ-एकाग्र करो।

उलटि पाछिलो पैंड़ो पकड़ो, पसरा मना बटोर।

यह कबीर साहब ने कहा है। यानी बहिर्मुख से अन्तर्मुख हो जाओ। मन जो पसर गया है, उसको बटोरो, जमा करो। कुछ भी फैलाव जिसमें नहीं है, वहाँ तक सिमटो। वह क्या है? वह है विन्दु। अपने मन को विन्दु तक समेटो। यह काम अन्दाजी नहीं होगा। जो गुरु इसको जानेगा, वही बातावेगा। जिसने इसका साधन किया होगा, वही

बतावेगा। जो ध्यान की विधि जानता है, वही ध्यान करता है। वही बता सकता है कि किस तरह मन समेटा जाता है, किस तरह अपने को विन्दु पर लाया जा सकता है। जो एक विन्दु पर अपने को लाता है, एक प्रकार से समाधि को वह पाता है। तब उस समय वह दुनिया को नहीं जानता है, शरीर को नहीं जानता है। वह अपने अन्दर घुसेगा, तो पहले जो अन्धकार मालूम होता था, सो छूट जाएगा। अन्धकार के विरुद्ध में जो चीज है, वह है प्रकाश। अंधकार का उलटा प्रकाश होता है।

विन्दु-ध्यान से जो प्रकाश होता है, वह बाहर का प्रकाश नहीं है। वह सूर्य, चन्द्र और तारे का प्रकाश नहीं है, वह अन्तर्ज्योति है। वह अन्तर्ज्योति, ब्रह्मप्रकाश है। सबके अन्दर में वह ईश्वर की ज्योति विराजती है।

संसार में अन्धकार और प्रकाश; दोनों को देखते हैं। दोनों में शब्द से काम चलता है। अन्तर में ज्योति है, उसमें भी शब्द है। जो प्रकाश के शब्द को पकड़ता है, अज्ञान-अन्धकार से, विषय-ज्ञान से छूटता है। इन बातों को वह अपने आप जानता है। वह शांति पाने लग जाता है। और शब्द का अंत जहाँ होता है— अशब्द हो जाता है। उसको अनाम कह सकते हैं। वह एक में है? नहीं, सबमें। जो अपने अन्दर के शब्द को पकड़ता है, वह अनाम-ईश्वर के शान्ति-स्वरूप तक पहुँचता है। जब ईश्वर तक पहुँचता है, वह ईश्वर ही हो जाता है। सन्त कबीर साहब ने कहा है—

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

सन्तों ने इसी के लिए रास्ता बताया है। विन्दु-ध्यान करो और नाद-ध्यान करो। इसको कोई अपवित्र मनवाला कर सकेगा? कभी नहीं। इसलिए जिससे मन अपवित्र होता है, उसको छोड़ दो। झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार, ईर्ष्या, राग द्वेष; इन सबको छोड़ो। लेकिन एक ही बार सब नहीं छूट जाते। धीरे-धीरे हटता है। हटाते जाओ, हट जाएगा। इसी तरह सत्य में अपने को लगाओ। गुरु के मार्ग पर चलते चलो। तब वह 'शान्ति' मिलेगी जो सन्तों को मिली। संसार में रहते हुए जो उस 'शान्ति' को पाता है, वह जीवन्मुक्त होता है। ये जीवन्मुक्त जहाँ रहते हैं, वहाँ सत्संग होता रहता है।

जीवन मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्हके हिय पाषान।।

—गोस्वामी तुलसीदासजी

सन्तों के ज्ञान में शांति का उपदेश है। अन्दर में शान्ति है, बाहर में नहीं। इसीलिए पसरे हुए मन को समेटो। विन्दु तक पूरा समेटना होगा। विन्दु में नाद मिलता है। उसमें जो अपने को लगाता है, वह वहाँ तक पहुँचता है, जहाँ 'निःशब्दं परमं पदम्' है। इसके लिए पहले स्वयं उस अन्तर-नाद को पकड़ो, पीछे स्वयं उस नाद से पकड़े जाओगे। वह नाद ईश्वर तक पहुँचा देगा, जो ईश्वर शान्ति-स्वरूप हैं।

(जलंधर पंजाब, १३.१०.१९७८ ई0)

९. भगवान श्रीराम का राज्य किधर है?

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

संसार परिवर्तनशील और नाशवान है। जहाँ लोग बसते थे, वहाँ आज गंगाजल का प्रवाह होता है और जहाँ गंगाजल का प्रवाह था, वहाँ लोग बसते हैं। यहाँ पहले क्षत्रियों का राज्य था जो हजारों वर्षों तक वह रहा। भगवान श्रीराम जिस वंश में हुए, वह वंश भी रहने नहीं पाया। मुसलमान लोग आए, उन्होंने राज्य किया, फिर उन लोगों का राज्य चला गया। अंग्रेज आए, उन लोगों का राज्य भी चला गया। अपने शरीर को सोचो—बच्चा, जवान और बूढ़ा होकर फिर लापता हो जाता है। अपने शरीर में भी अनेक टुकड़ों के मिलने से एक होता है। यह संसार भी कण-कण से बना हुआ है, इसलिए खण्डनीय है । संसार में कोई पदार्थ नहीं, जो अखण्ड हो।

हमलोग शब्द सुनते हैं। इसका भी खण्ड होता है। प्रत्येक अक्षर पर खण्ड होता है। शब्दों में भी जिसको एकाक्षर ब्रह्म कहते हैं, उसका भी पसार करने से तीन अक्षर—अ, उ, म्, हो जाते हैं। बाजे-गाजे के जितने शब्द हैं, सबके खण्ड होते हैं। संसार का कोई पदार्थ अखण्ड नहीं। संतलोग कहते हैं—ईश्वर का नाम अखण्ड है, किन्तु जिस शब्द का उच्चारण हम मुँह से करते हैं, जो परमात्मवाची है, वह भी अखण्ड नाम नहीं है।

सन्त कबीर साहब ने कहा है—

जथा—

अखण्ड साहिब का नाम और सब खण्ड है
आदिनाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत हीं कंचन भया, छूटा बन्धन मोह।।

यह अखण्ड नाम है—आदिशब्द, जिससे सृष्टि हुई है—बिना शब्द के सृष्टि नहीं हो सकती। शब्द हुआ, कम्प हुआ। आदि सृष्टि में आदिकम्प हुआ। वह शब्द ईश्वर से लगा हुआ है। उस शब्द को जो पकड़ेगा, वह खिंचकर ईश्वर तक चला जाएगा। वह शब्द अक्षरों में लिखा नहीं जा सकता, मुँह से बोला नहीं जा सकता।

'अघोषम् अव्यंजनम् अस्वरं च अतालुकण्ठोष्ठमनासिकं च।
अरेफ जातं उभयोष्ठ वर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।'

उसको चेतन जानता है। उस शब्द को जो पकड़ता है, तो वह उसी तरह हो जाता है, जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। इस शब्द को पकड़ने से बन्धन-मुक्त हो जाता है। यह अखण्डनीय है।

श्रीमद्भागवत पढ़ो। उसमें लिखा है—शब्द तीन प्रकार के होते हैं—प्राणमय, मनोमय और इन्द्रियमय।

'शब्द ब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रिय मनोमयम्।
अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत।।'

प्राणमय शब्द चेतन-धारा को कहते हैं। ईश्वर का नाम प्राणमय शब्द है। उसको जपने की जरूरत नहीं, ध्यान में जाना जाता है। उसको पकड़ो। उसको क्या पकड़ोगे, वही तुमको पकड़ लेगा। वही अखण्ड साहिब का नाम है। सन्तों के ग्रन्थों को पढ़ो। बराबर सत्संग करते रहो, तो इसको अनपढ़ लोग भी जान सकते हो।

सन १९२२ ई० में छपरा में मैं एक महीने ठहरा था, वहाँ एक सत्संगी था। वह पढ़ा-लिखा नहीं था, किन्तु सत्संग सुना था। शब्द के बारे में चर्चा होने पर उसने कहा—एक शब्द और होता है, जिसको

श्रुतात्मक—शब्द कहते हैं। उस सत्संगी का नाम था—तहबल दास। जाति का वह मेहतर था; लेकिन सत्संग के प्रभाव से वह इस बात को जानता था। आपलोग भी सत्संग कीजिए। आपलोग भी बहुत बात समझिएगा।

नाम-भजन की बड़ी महिमा है। वह नाम-भजन ध्वन्यात्मक शब्द का होता है। ध्यान में डूबनेवाला ही उस ध्वन्यात्मक नाम को पकड़ सकता है। इसके लिये संत कबीर ने बताया कि—

चंचल मन थिर राखु, जबै भल रंग है।
तेरे निकट उलटि भरि,पींव सो अमृत गंग है।।

अपने को उस अमृत को पाने के लिए उलटाओ अर्थात बहिर्मुख से अन्तर्मुख करो। बहती हुई पवित्र धारा को गंगा कहते हैं। आपके अन्दर बहती हुई चेतन-धारा पवित्र गंगा है। अपने अन्दर जो उलटेगा, वही इस गंगा को पावेगा और उस शब्द को भी पावेगा। यह जानकर भजन कीजिए। अपने अन्दर में खोजिए। आपके अन्दर ऐसा भण्डार है, कितना भी खर्च कीजिये, कमने को नहीं है।

इस शरीररूपी गुफा के अन्दर परमात्मा रहते हैं। इस शरीर में बुद्धि है। आजकल के वैज्ञानिकों ने भी माना है कि बुद्धि से क्या-क्या चीजें निकलती हैं। कितनी चीजें, कितनी बातें और निकलेंगी, ठिकाना नहीं। पता लगाइए कि विज्ञान का छोर किधर है? अपने अन्दर है।

भगवान श्रीराम का राज्य किधर है? आपके अन्दर है। उस रामप्रताप-रूपी सूर्य के दर्शन से अज्ञानता जाती रहती है। काम-क्रोधादिक विकार दमित होते हैं। सुख, संतोष, विराग, विवेक आदि बढ़ जाते हैं।

संत लोग कहते हैं—परमात्मा पर विश्वास करो। उस परमात्मा को पाने का यत्न अपने अन्दर करो। गुरु के बताए अनुकूल यत्न करने के लिए सत्संग प्रेरण करता है, इसलिए सत्संग करो। बिना सत्संग के लोग मार्ग से गिर जाते हैं। आपलोग नित्यप्रति प्रातः—सायंकाल सत्संग कीजिए। नित्य सद्ग्रन्थों का पाठ कीजिए। जो समझ में नहीं आवे, वह बात अपने से विशेष जानकार से समझ लीजिए। कभी-कभी मेरे पास आकर भी समझिए। एक आदमी सब आदमी के पास नहीं जा सकता, लेकिन सब आदमी एक आदमी के पास जा सकते हैं।

इन बातों को समझाने के लिए मासिक-पत्र-'शांति-सन्देश' महीने—महीने निकलता है। उसको पढ़िये, इससे मेरा विचार आपलोगों को मालूम होता रहेगा। रविवार को दिन में सत्संग किया कीजए। जो सत्संग नहीं करते हैं, उनका ख्याल पाप में गिर जाता है। सत्संग करते रहने से पाप-कर्म करने से मन रूकता है। कटिहार शहर के सत्संग-मंदिर में दिन को सुबह में और शाम में भी सत्संग होता है। आपलोग भी नित्य सत्संग किया कीजिए। सत्संग नहीं करने से वह समय फजूल-फजूल बातों में लग जाता है। इसलिए नित्य प्रातः और सायंकाल सत्संग कीजये। रविवार को दिन के अपराह्न काल में भी सत्संग कीजए।

(तौफिर दियारा, मुंगेर २५.०४.१९५४ ई0)

१०. ईश्वर -भजन महाभय से बचाता है

प्यारी धर्मानुरागिनी जनता !

आपलोगों का यह सत्संग-भवन है। यहाँ मैं बहुत बार आया हूँ। यहाँ आने पर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है, जब आपलोग मुझे यहाँ सत्संग हेतु बुलाते हैं। मैं प्रत्येक वर्ष यहाँ आता हूँ। शायद ही कोई वर्ष छूटा हो। मैं चाहता हूँ, अपना देश यानी भारत धर्म में मजबूत हो। मुझे विश्वास है कि सत्संग के प्रचार से देश के लोग धर्म में मजबूत होंगे। इसीलिए सब लोगों के लिए तथा आपलोगों के लिए सत्संग अत्यन्त अपेक्षित है। इस सत्संग का लक्ष्य है कि सारी जनता को भली बना दो। जनता भली बनेगी तब, जब लोगों का आचरण अच्छा हो।

लोगों में यह विश्वास है कि बहुत विद्या पढ़ने से लोग भले बनते हैं। परन्तु बहुत विद्या पढ़ने पर भी उनकी विद्या अविद्या बन जाती है। काम-क्रोधादिक विकार जबतक उनके मन में है, तबतक विद्या अविद्या बनी रहती है। जिस विद्या से दुर्गुणों से बचा जाए वही विद्या असली विद्या है। विद्या धर्म की रक्षा के वास्ते है। दुनिया में केवल कमाकर खाने के लिए विद्या नहीं है। अपने देश में साधु-संत, महात्मा बहुत हुए हैं। आचरण पवित्र होने के कारण ही वे लोग महान हुए हैं। पढ़े-लिखे लोग भी अच्छे होते हैं। परन्तु आचरण की पवित्रता केवल विद्या पढ़ने से ही नहीं होती है। इस युग का नमूना किसी से छिपा नहीं है। असली विद्या यह है कि साधु-सन्तों के पास जाकर उनके सत्संग से अध्यात्म-विद्या को ग्रहण करना। अध्यात्म-विद्या में संसार के प्रबन्ध के साथ-साथ ईश्वर-भक्ति की मुख्यता रहती है। शरीर में रहते हुए संसार का प्रबन्ध कैसे किया जाय, यह भी शिक्षा मिलती है। केवल वर्तमान शरीर के लिए प्रबन्ध करो, सो नहीं। इसके आगे के जीवन का कोई प्रबन्ध नहीं

किया तो कहाँ चले जाओगे, तुमको मालूम नहीं है। दुःख में जाना कोई पसन्द नहीं करते। यदि पहले इसका ख्याल नहीं किया कि शरीर छूटने के बाद भी जीवन रहता है, जिसे सुखी बनाना है। एक शरीर छूटने के बाद का बहुत लम्बा जीवन है जीवात्मा का। यह ज्ञान साधु-सन्तों के सत्संग में सिखलाया जाता है। यदि आगे के जीवन का प्रबन्ध नहीं करते हो, तो अपनी बहुत हानि करते हो। आगे का जो लम्बा जीवन है, उसके शुभ के लिये प्रबन्ध यह है कि ईश्वर का भजन करो। ईश्वर के भजन से तुमको शरीर छूटने के बाद भी सुख होगा। विद्या बहुत पढ़ोगे, लेकिन ईश्वर का भजन नहीं करोगे, तो उतना लाभ नहीं होगा।

संसार में अपने आचरण को सम्भाल कर चलो। ईश्वर के भजन में पाप-भाव में रखने से भजन नहीं बनता। दुनिया में कमा-खाकर रहने में लोग पाप-पुण्य पर नहीं सोचते। इसका विचार नहीं करनेवाले को आगे दुःख भोगना पड़ता है। ईश्वर के भजन में ऐसी बात नहीं। उसमें पाप से छूटना पड़ता है। इसलिए ईश्वर का भजन करो। भजन में आज-कल मत करो। संत कबीर साहब ने बड़ा अच्छा कहा है–

आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल।
आज काल्ह के करत हीं, औसर जासी चाल।।

ईश्वर के भजन के लिए पहले भजन को समझो। संसार में रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श; ये पाँच पदार्थ हैं। इन पाँचों में से कोई ईश्वर नहीं। इन पाँचों को पहचानते रहोगे तो ईश्वर का दर्शन नहीं होगा। चाहे अद्‌भुत वा दिव्य शरीर हो या साधारण शरीर हो, सबमें ये पाँचों पदार्थ रहते हैं। इन पाँचों का समूह जहाँ हो, वहाँ समझो ईश्वर नहीं है। ईश्वर तो सबमें हैं, लेकिन किसी की तरह वे नहीं होते। पंच विषयों को पहचानने के लिए पंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन इन्द्रियों से जो तुम जानते हो, वे ईश्वर नहीं हैं।

ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के अलावा मन, बुद्धि, चित, अंहकार, ये जो चार अन्तःकरण हैं। इन सबों से युक्त जो कुछ तुम देखते हो, वह ईश्वर नहीं है। इन सबों के अतिरिक्त तुम अपने स्वयं हो, शरीर में तुम रहते हो। शरीर में रहते हुए तुम इससे विलक्षण हो। शरीर के साथ वाले ज्ञान को छोड़कर अपने आप में जो ज्ञान हो, उसी ज्ञान में तुम ईश्वर को पहचानोगे। इन बातों को ठीक से याद रखो । तुम्हारा निजी-ज्ञान क्या है? शरीर-इन्द्रियों से छूटकर निजी-ज्ञान में जो पहचानोगे, वही ईश्वर है। ऐसा भजन करो कि ईश्वर को पहचान सको। इन्द्रियों के ज्ञान से अपने को हटा लो। ऐसा करने से ईश्वर की ओर जाओगे। इसके लिए बाहर जाने की जरूरत नहीं, अपने अन्दर जाना होगा। बाहर-बाहर जाना छोड़ दो। जो अपने को अपने में समेटता है, वह ईश्वर की ओर जाता है। अपने को अपने अन्दर समेटो, इसी के लिए यह सत्संग है।

बाहरी चीजें जो कुछ ईश्वर को चढ़ाते हैं, उनमें अपना भाव रखते हैं। ईश्वर दर्शन करो, सारा दुःख भाग जाएगा। जैसे आग के नजदीक जाने से जाड़ा भाग जाता है। इसीलिए ईश्वर का भजन करो। चाहे तुम पढ़े हो या अनपढ़। अपने को पाप से बचाओ। ईश्वर का भजन करके मनुष्य-देह को सफल करो। ईश्वर भजन जो थोड़ा भी करता है, वह महाभय से बचता है। महाभय यह है कि मनुष्य-शरीर के अलावा दूसरी योनि में जाना। जो अपने को पापों से बचाता हुआ संसार में रहता है, वह अपने को भला बनाकर रहता है। तुम्हारा रहने का घर कितना भी मजबूत हो लेकिन वह सब दिन के लिए नहीं है। लेकिन सत्संग का घर सब दिन के लिए है, इसलिए यह घर मजबूत बन जाय। यहाँ समय-समय पर बैठकर भजन करो और लोगों को बुलाकर सत्संग भी करो, जैसे मुझे बुलाकर सत्संग करते हो।

(सत्संग-मंदिर, सिकन्दरपुर, भागलपुर ०२.०१.१९६० ई0)

११. बात -बात में गुरु की आवश्यकता है

प्यारे लोगो !

इस शरीर की हालत आपलोग देखते हैं। शरीर की हालतों में जो अच्छा या बुरा कुछ उपजते रहते हैं, वह सब आपलोग जानते और भोगते हैं। सबके लिए यही बात है। मेरा यह शरीर है, मेरा मन है, मेरी यह बुद्धि है इत्यादि लोग बोलते हैं। यह मेरा कहनेवाला कौन है? इसको पहचानना चाहिए। बाहर संसार में तमाम घूमो और पूछते रहो कि मेरे को बता दो, मेरे को बता दो। कोई कहेंगे कि यह पागल है। कोई कहेंगे कि ज्ञान की बात कर रहा है। जो अच्छे लोग हैं, विशेषज्ञ हैं, वे कहेंगे– *'तू अपने में खोज, तो अपने को पाएगा।'*

अपने में अर्थात् अपने शरीर में खोजोगे तो अपने को पा जाओगे। इस खोज में कोई अपने जानते लाख कोशिश करे, कोशिश में लगावे तो भी इसका पता नहीं पा सकता है। यह पता कोई तभी पाता है, जिसको पता बतानेवाले मिले हैं। उनसे जाकर पूछिए। जिनको पता मिल गया है, वे ही अन्तर-साधन करनेवाले पूर्ण साधु-सन्त हैं।

साधु-संत को इसका पता मिलता है। इसलिए कि वे अपने अन्दर खोजते हैं। अपने शरीर के अन्दर खोज कर लीजिए। अपने को समझे कि अपने शरीर में मैं कहाँ रहता हूँ। शरीर के ऊपर तो कहीं बैठा नहीं हूँ और अपने को विश्वास भी नहीं कि मैं शरीर हूँ । खोज करे, जहाँ वह बैठा है। बाहर में कहीं बैठा नहीं है। अन्दर खोज करे, बाहर का देखना छोड़कर। अन्दर में आँख बन्द करके पूछो मैं

कहाँ हूँ। उत्तर आवेगा, अन्धकार में हूँ। अन्धकार कहाँ है? आँख में है। यहाँ से खोजना आरम्भ करो।

जबतक अभ्यासी गुरु नहीं मिलेंगे, कैसे खोज करोगे, पता नहीं मिलेगा। बात-बात में गुरु की आवश्यकता होती है। बिना गुरु के एक अक्षर नहीं सीख सकते, माता-पिता भी नहीं सिखला सकते। ऐसे गुरु जो बता दें कि अन्धकार में कहाँ हो, वहाँ से कैसे चलना होगा? ऐसे गुरु कहाँ मिलते हैं? सत्संग में मिलते हैं। सत्संग में यह ज्ञान उपजता है कि गुरु की खोज करो। इसलिए ईश्वर की पहली भक्ति सन्तों का संग है। दूसरी बात है कि सत्संग में जो वचन हो, उसे खूब प्रेम से सुनो। तीसरी बात है कि उस सत्संग-वचन में जो गूढ़ बात हो, उसको जानो। इसलिए गुरु की ऐसी भक्ति करो कि जिसका अन्दाजा नहीं। सदा गुरु के साथ में कोई रहे, यह भी संभव नहीं। इसलिए कबीर साहब ने कहा है–

जो गुरु बसैं बनारसीं, शिष्य समुन्दर तीर।
एक पलक बिंसड़ै नहीं, जो गुन होय शरीर।।

हमेशा गुरु की याद करो। द्वापर युग में द्रोणाचार्य एक गुरु हुए थे। कौरव-पाण्डव को वे धनुर्विद्या सिखलाते थे। एक भील-पुत्र भी गया उनसे सीखने के लिये, तो आचार्य द्रोण ने कहा, मैं राजकुमारों को सिखलाता हूँ, दूसरों को नहीं। वह भील-पुत्र था एकलव्य। उसने द्रोण की मूर्ति बनाई और उसका ध्यान करते हुए ध नुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। होते-होते वह उस विद्या में इतना प्रवीण हुआ, जितना अर्जुन भी नहीं था। एक दिन ये लोग जंगल में

घूमते थे। एक कुत्ता भी उनके साथ में था। वह कुत्ता एकलव्य को देखकर भूँका, तो एकलव्य ने उस कुत्ते के मुँह में इतने तीर मारे कि उसका मुँह तीरों से भर गया। लेकिन एक बूँद भी खून नहीं गिरा। कुत्ता जब इन लोगें के पास वापस आया तो इनलोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस कुत्ते के पीछे-पीछे ये लोग चले।

वह कुत्ता एकलव्य की कुटिया के पास खड़ा हो गया। द्रोणाचार्य ने पूछा—'वह विद्या तुमने किससे सीखी? एकलव्य ने कहा, आपसे। अपकी मूर्ति बनाकर और उसका ध्यान करके मैंने इस विद्या को हासिल किया। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसको गुरु में ज्यादा निष्ठा होती है, यह किसी-न-किसी तरह विद्या पाता है। गुरु के ख्याल से, गुरु के संग से लोग विद्या पाते हैं।

राजा उत्तानपाद का पुत्र ध्रुव था। उसकी सौतेली माँ ने उसे पिता की गोद से उतार दिया। ध्रुव तपस्या करने जंगल चला गया। पाँचों भाई पाण्डव एक माता के नहीं थे। युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन की माता कुन्ती थी। नकुल-सहदेव की माँ माद्री थी। सब सौतेली माताएँ एक-सी नहीं होतीं। कुन्ती ने नकुल और सहदेव को बहुत प्यार से पालन-पोषण किया। किसी माता को यदि सौत-पुत्र हो तो उसका प्यार से पालन करें और सच्चरित्रता धारण करें। कुन्ती बड़ी सती थी और बड़ी विरक्ति उनमें थी।

महाभारत-युद्ध के बाद जब पाँचों भाई पाण्डव का राज्य हुआ, तो धृतराष्ट्र और गांधारी; दोनों जंगल चले। उनके संग कुन्ती भी जंगल चलने लगी, तो उनके पुत्रों ने इन्हें मना किया। कुन्ती ने कहा कि

मैंने अपने पति के समय में बहुत सुख पाया। मैं भी अब जंगल जाऊँगी। उन लोगों के साथ कुन्ती भी चली गई। लोगों को चाहिए कि सौत-पुत्र को सुदृष्टि से देखे और पतिव्रता भी रहे। पतिव्रता हुए बिना पवित्र हृदय नहीं होता। पुरुष को भी चाहिए कि श्रीराम की तरह एक पत्नीव्रत धारण करे और ईश्वर-भजन करे, इसमें कौन मना करेगा? जिसका हृदय प्रशान्त महासागर की तरह स्थिर हो गया है (प्रशान्त महासागर में ढेव नहीं उठता और अन्य समुद्र में ढेव उठता है।) वही शान्ति पाता है और हृदय शान्ति नहीं पाता। जो शान्ति पाता है, तो वह परमात्मा को पाता है।

जैसे आकाश का अंश घटाकाश, मठाकाश होता है, लेकिन अभिन्न-अंश है। इसी तरह बिना टूटा-फूटा हुआ अंश जीवात्मा, परमात्मा का अंश है। अंश तो आवरण बनाता है। आवरण टूट जाय तो अंश नहीं रहेगा। अंश अंशी में मिल जाता है। वह प्रशान्त महासागर की तरह स्थिर हो जाता है। जैसे ईश्वर हैं, उन ईश्वर से मिलकर वह भी ईश्वर हो जाता है। इन्हीं सब बातों को सन्तमत बतलाता है।

(फतेहपुर, संताल परगना, १६.११.१९७६ ई0)

१२. केवल सुनिये नहीं, कीजिए भी

प्यारे लोगो !

नहँ बालक नहँ यौवने, नहँ विरधी कछु बन्ध।
वह अवसर नहीं जानिये, जब आई पड़े जमफंद।।'

इसीलिए जो घड़ी अभी मिली है, उस घड़ी को सुमिरण-ध्यान भजन में लगा देना चाहिए। समय बाँध-बाँधकर त्रयकाल सन्ध्या करनी चाहिए। एक समय वह होता है, जब भिनसर (ब्रह्ममुहूर्त) होता है। दूसरा समय होता है, जब हमलोग स्नान करते हैं, उसके बाद और तीसरा सायंकाल। तीनों समय जो सन्ध्या करेगा वह अवश्य ही उत्तम जन्म पाकर थोड़े ही जन्मों में मोक्ष प्राप्त करेगा। कहा गया है—

यह शरीर सागर अवगाहा। यहिं कर नहिं कोइ पावहिं थाहा।
अन्तर उलटि निरेखै जोई। आवागमन मिटावै सोई।।'

यह शरीर बड़ा समुद्र है। इसमें स्नान करने से इसकी कोई थाह नहीं पाता है। इसके सम्बन्ध में बाबा नानक ने कहा है—

लख-लख अकासा, लख-लख पताला।

बाबा नानक आज नहीं हैं, लेकिन उनकी वाणी आज भी है। उनके वचन में है—

क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपनी जाया।
सबका लोहू एक है, साहब फरमाया।।
पीर पैगम्बर औलिया, सब मरने आया।
नाहक जीव न मारिये, पोखन को काया।।'

जो लोग संयम से खाते हैं, उनका मन संयमित हो जाता है। क्या जानें, शरीर कब खत्म हो जाएगा—बालपन में, युवापन में या बुढ़ापे में? कब यह शरीर खत्म हो जाएगा, ठिकाना नहीं।

जो भगवद्भजन करता है, वह इस जन्म में भी अच्छा होता है, भला बनता है, अन्त में मोक्ष पाता है। सन्त कबीर साहब ने इस शरीर के सम्बन्ध में कहा है—

डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकास।
गगन मंडल में घर किया, हीरा पाया दास।।'

यह शरीर ऐसा ही है। ऐसा कि यह बड़ा समुद्र है। इसकी थाह लोग नहीं पाते हैं। इसमें जो मरजीवा—बहुत देर तक गोता लगानेवाले यानी जो बहुत देर तक ध्यान लगाते हैं, वे कई जन्मों के बाद मोक्ष पा लेते हैं।

एक फकीर थे। रामानन्द स्वामी के समय की बात है। फकीर ने अपने चेले को रामानन्द स्वामी के पास भेजा। फकीर के चेले ने रामानन्द स्वामी से पूछा कि आपने कुछ हराम खाया है। यों मुसलमान लोग सुअर को हराम कहते हैं । लेकिन सो बात यहाँ नहीं है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि, ये ही हराम हैं। ये सब जल्द वश में नहीं आते। रामानन्द स्वामी ने जवाब दिया कि 'सुअर हराम नहीं है, काम, क्रोधादि विकार ही हराम हैं, धीरे-धीरे लोग इनको खाते हैं यानी वश में करते हैं और खाते-खाते अर्थात् वश में करते-करते जो इन विकारों को अपने वश में पूर्णरूपेण कर लेते हैं, वे कृत-कृत्य हो जाते हैं। कृत-कृत्य क्या हो जाते हैं? सन्त सुन्दरदासजी की वाणी में है—

श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।

अंग बिना मिलि संग, बहुत आनन्द बढ़ावै।।
बिनु शीश नवै जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिये रहै।
मिलि परमातम सों आतमा, पराभक्ति सुन्दर कहै।।'

एक परा-भक्ति है, तो दूसरी अपरा-भक्ति होनी चाहिए। भक्ति यानी एक निम्न-श्रेणी की भक्ति है और दूसरी उच्च-श्रेणी की भक्ति है। सुमिरण, स्थूल ध्यान या भजन, निम्न-श्रेणी का भजन है। इसमें जो परिपक्व हो जाते हैं, तो बिना कान के अन्तर्नाद सुनते हैं। आँख बन्द है, लेकिन अन्दर में देखते हैं। अन्तर में बिना जिभ्या की ही ध्वनि होती है। यह पराभक्ति है। इसके पहले अपरा में यानी निम्न-श्रेणी के सुमिरण, ध्यान भजन में परिपक्व होना चाहिए। इसी के लिए त्रयकाल सन्ध्या है। भिनसर में (अर्थात् सूर्य उगने के पहले ब्राह्ममुहूर्त में) सोकर उठने पर आँख धोकर, कुल्ली कर के, सुमिरण, ध्यान, भजन तीनों करना चाहिए। फिर दोपहर में स्नान करके तथा सायंकाल पैर, हाथ
धोकर, कुल्ली कर के करना चाहिए। जो इस तरह त्रयकाल सन्ध्या बराबर करता रहेगा, तो उसको होगा कि बैठा है और भजन होता है। लोगों से बातचीत होती है और भजन भी होता है। यह है परा-भक्ति। लेकिन अपने मन से क्या बतावे, जबतक अच्छे गुरू नहीं हो, तबतक इस बात को क्या जाने। इसीलिए कहा है—

गुरु कीजिये जान, पानीं पीजिये छान।'

गुरु को देखकर यानी जाँचकर करना चाहिए। देखना चाहिए

कि विकार इनमें होता है या नहीं। पहले तो पढ़ानेवाले गुरु चाहिए। ये नहीं हो तो संसार का काम नहीं चलेगा। दूसरे गुरु वे होते हैं जो कहते हैं—'संसार का भी काम करो और सुमिरण, भजन, ध्यान भी करो।' इसको करते-करते बढ़ जाते हैं तो बैठे हैं, ध्यान होता है, बात करते हैं, भजन होता है। इनसे अनुचित काम नहीं होता है।

आपलोगों को देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है। पहले यहाँ रामायण का पाठ हुआ। बिना बिछावन के ही आपलोग यहाँ बैठ गए। केवल सुनिए ही नहीं, कीजिए भी। हमारे यहाँ नियम है कि पहले छह महीने तक मांस-मछली खाना छोड़िए, तब भजन-भेद लीजिए। हमारे वासे में लहसुन—प्याज कुछ नहीं चलता है। जिभ्या को वश में कीजिए, इन्द्रियाँ वश में होगी। साधन करते करते फिर होगा—

सोवत जागत ऊठत बैठत, टुक विहीन नहिं तारा।
झिन झिन जन्तर निशि दिन बाजै, जम जालिम पचिहारा।

जितने हमारे संग के लोग हैं, सब ब्रह्मचारी हैं। किन्हीं का विवाह नहीं हुआ है। जो कोई उचित काम करने योग्य हैं, ये लोग करने से बाज नहीं आते हैं। शुरू में हमारे हाथ का भी चमड़ा मोटा हो गया था, क्योंकि हमने भी खुरपी चलायी है, कुदाल भी चलाया है। अब यह अवस्था है, ये लोग हमको खिलाते है, तो हम खाते हैं।

(महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर, २०.०२.१९८३ ई0)

१३. संतमत सनातन धर्म है

धर्मानुरागिनि प्यारी जनता !

ईश्वर की भक्ति में नाम-भजन की साधना प्रधान है। नाम-भजन नहीं, तो ईश्वर का भजन नहीं। 'नाम' शब्द को कहते है। जिस शब्द से किसी की पहचान हो, वह शब्द उसका नाम है। यह बहुत समझाने की बात नहीं है, खुलासा है। शब्द भी दो प्रकार के होते हैं—एक शब्द जो हमलोग इस धरातल पर, इस वायुमण्डल में, इस संसार में बोलते हैं और सुनते हैं। यह अनित्य शब्द है।

ईश्वर के नाम के विषय में अच्छी जानकारी होनी चाहिए। शब्द ही नाम है। इसलिए शब्द के विषय में ठीक-ठीक जानना चाहिए। शब्द दो तरह के होते हैं—नित्य और अनित्य। इस भूमण्डल पर, आकाश—मण्डल में जो शब्द सुनते हैं, वह अनित्य शब्द है। इसको आकाश का गुण कहते हैं। बिना आकाश के यह शब्द नहीं हो सकता; लेकिन यह स्थूल आकाश जबतक है, तबतक इसके अन्दर के शब्द विद्यमान रहते हैं। आज के वैज्ञानिकों का ख्याल है कि जो शब्द पहले हो चुके हैं, उनको पकड़ा जाय; क्योंकि वे सभी शब्द आकाश में मौजूद हैं। यह शब्द नित्य है; लेकिन हमलोग इसको नित्य नहीं मानते। यह जड़ात्मक शब्द है, जड़ -आकाश से बना है; जबतक यह आकाश है, तबतक वह शब्द है। इस आकाश के प्रलय होने पर वह शब्द भी नहीं रहेगा। इसलिए उसको अनित्य शब्द कहते हैं। ये मायावी शब्द हैं। इन शब्दों से ईश्वर के गुण प्रकट होते हैं। इनसे ईश्वर की महिमा जानते हैं और उस ओर हमारी वृत्ति होती है। इसलिए महात्माओं ने शब्द का जप बताया है। इसको वर्णात्मक शब्द कहते हैं, केवल वर्णात्मक शब्द है, ऐसा नहीं; ध्वन्यात्मक नाम भी है। ध्वन्यात्मक इसको इसलिए कहते हैं कि इसको लिख नहीं

सकते। जो नाम कभी नाश नहीं हो, सो यह नहीं है। इसको सगुण शब्द भी कहते हैं। इसमें रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण; तीनों मिले हुए हैं। वर्णात्मक भी सगुण और ध्वन्यात्मक भी सगुण है, जो बाजे वगैरह के शब्द हैं। अपने अन्दर भी सगुण-मण्डल के सभी शब्द सगुण हैं। ये सगुण शब्द अपने-अपने मण्डल की विद्यमानता के साथ हैं। जब प्रलय होते हैं, तब ये शब्द नहीं रहते; इसलिए इनको अनित्य शब्द कहते हैं। चाहे वर्णात्मक, चाहे ध्वन्यात्मक; सभी सगुण शब्द हैं, जो माया के मण्डल से प्रवाहित हुए हैं। इसका साधन सगुण शब्द का साधन हैं। ये कभी-न-कभी लय हो जाते है। इसलिए अध्यात्मबुद्धि के लोग इसको अनित्य शब्द कहते हैं। ये सभी सगुण शब्द हैं। ईश्वर के भजन के लिए जो सगुण-शब्द का भजन करते हैं, वे वर्णात्मक का जप और ध्वन्यात्मक का ध्यान करते हैं। ये सब शब्द ईश्वर को जाहिर कराते हैं; लेकिन इससे ईश्वर की पहचान नहीं होती। इन शब्दों से ऋद्धि-सिद्धि भी मिलती है; लेकिन ईश्वर की पहचान नहीं होती। ईश्वर की पहचान के लिए निर्गुण शब्द है। माया-मण्डल का जहाँ पसार नहीं, त्रयगुणों का जहाँ पसार नहीं, वह सच्चिदानन्द-मण्डल का शब्द निर्गुण है। वहाँ माया का, त्रयगुणों का पसार नहीं है। वह निर्गुण शब्द है।

यह विश्वास करने के लिए जानना चाहिए कि आदि में परमात्मा अपने-आप ही थे। उनकी मौज से माया रूपी सृष्टि हुई। जब सृष्टि के लिए उन्होंने मौज की, तो कम्प अवश्य ही हुआ। कम्प हो और शब्द नहीं, यह युक्तिसंगत बात नहीं। प्रत्येक कम्पन में शब्द है। कम्पन का सहचर शब्द अवश्य होता है। आदि में जो शब्द हुआ,

उसको निर्गुण कहते हैं। यह निर्गुण-शब्द परमात्मा-कृत हुआ। परमात्मा तक इसकी धारा लगी हुई है। इसी धारा से ईश्वर तक पहुँचा जाता है।

इस नाम में वैसा ही गुण है, जो ईश्वर में है। जिस केन्द्र से कोई शब्द निकलता है, उस केन्द्र में जो गुण होता है, उस केन्द्र के गुण को लिए हुए वह शब्द होता है और सुननेवाले में वह गुण हो जाता है, जैसे किसी के गाने में प्रसन्नता का गुण है, तो उसको जो सुनता है, वह भी प्रसन्न हो जाता है।

ईश्वर से जिस शब्द का विकास हुआ, आदि स्फोट भी कहते हैं। वह आदि स्फोट ईश्वर का गुण लिए हुए है। जिसने उसको पहचान लिया है, तो उसमें भी ईश्वरीय गुण आ जाता है। इसलिए परमात्मा को 'जाननेवाला' जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई' हो जाता है। उसमें वही शक्ति आ जाती है।

निर्गुण-नाम को बहुत कम लोग जानते हैं। निर्गुण-नाम तो क्या, ध्वन्यात्मक-नाम को भी बहुत कम लोग जानते हैं। बिना सगुण-शब्द के साधन से निर्गुण-शब्द पकड़ा नहीं जा सकता। नाम-जप सगुण शब्द है।

अपने अन्दर के सगुण-मण्डलों के शब्द सगुण हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण—ये चारों जड़-मण्डल हैं। मण्डल के केन्द्र से धारा प्रवाहित होती है। ऊपर का शब्द नीचे दूर तक जाता है। सूक्ष्म स्थूल में स्वाभाविक ही समाता है। स्थूल-मण्डल के केन्द्र पर सूक्ष्म का शब्द पकड़ा जाएगा। सूक्ष्म के केन्द्र पर कारण का शब्द पकड़ा जाएगा। कारण के केन्द्र पर महाकारण का शब्द पकड़ा जाएगा। जो साधक भजन करेगा, बढ़ते—बढ़ते महाकारण के केन्द्र पर

पहुँचेगा। वहीं पर वह निर्गुण-शब्द को पकड़ेगा। वह शब्द सर्वव्यापक है, लेकिन पहचान नहीं होगी। यही निर्गुण शब्द ईश्वर तक है, ईश्वर से प्रवाहित है और ईश्वर तक पहुँचाता है, इसीलिए —

निर्गुण निर्मल नाम है, अवगत नाम अवंच।
नाम रते सो धनपतीं, और सकल परपंच।।'

(संत गरीबदासजी)

इसी निर्गुण-नाम से ईश्वर की पहचान हो जाती है। अमृतनाद—उपनिषद् में लिखा है—

'घोषमव्यञ्जनमस्वरञ्च अतालुकण्ठोष्ठमनासिकञ्च यत्।
अरेफजातमुभयोष्ठवर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्।।२४।।'

यह आदिशब्द है। इसी के लिए संत कबीर साहब ने कहा है—

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत हीं कंचन भया, छूटा बन्धन मोह।'

इसी से ईश्वर की पहचान होगी। संतों को जब इसका प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, तो उन्होंने लोगों को इसका ज्ञान दिया। गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण में है—

बन्दउँ राम नामं रघुबर को। हेतु कृसानु भानु -हिमकर को।।

'राम' में र कार, आ कार और म कार है। 'कृसानु' में र कार नहीं रहे, तो उसका अर्थ अग्नि नहीं होगा। 'भानु' में आ कार नहीं रहे, तो उसका अर्थ सूर्य नहीं होगा और 'हिमकर' में म नहीं रहे, तो उसका अर्थ चन्द्रमा नहीं होगा। यह निर्गुण रामनाम है, उपमा रहित है, गुणों का भण्डार है। त्रयगुणों का भण्डार भी यही है। मनुष्य-भाषा में इस निर्गुण नाम को 'ओ३म्' कहते हैं। ध्वन्यात्मक नाम को और वर्णात्मक—नाम को भी जानिए। वर्णात्मक नाम बहुत हैं। ध्वन्यात्मक नाम भी

बहुत हैं, लेकिन निर्गुण नाम एक ही है।

जैसे काबेरी, गोदावरी, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ जब समुद्र में मिल जाती हैं, तो केवल समुद्र का ही शब्द रह जाता है, इसी तरह सब नाम निर्गुण में मिल जाते हैं।

सकल नाम जब एक समाना। तबहीं साध परम पद जाना।।

(संत कबीर साहब)

एकाग्र मन से जप करना चाहिए। एकाग्रता की शक्ति होने से और काम किया जाता है। विशेष एकाग्रता के लिए किसी इष्ट-मूर्ति का ध्यान करते हैं। संतों ने कह दिया—एक गुरु-मूर्ति का ध्यान करो। कोई प्रतिबन्ध नहीं है, जिसमें अपनी श्रद्धा हो, उसका ध्यान करो। मूर्ति -ध्यान में अनेक लकीरे हैं। एक लकीर में कितने ही विन्दु हैं। बहुत-से विन्दुओं, बहुत-सी लकीरों और बहुत-से अंग-प्रत्यंगों के योग से मूर्ति बनती है, लेकिन केवल एक-ही-एक रह जाय, इसके लिए विन्दु-ध्यान है।

विन्दु-ध्यान में पूर्ण सिमटाव होता है। जिस मण्डल में पूर्ण सिमटाव हुआ, उस मण्डल से उसकी गति और आगे हो जाएगी। 'अचर चर रूप हरि सर्वगत सर्वदा' होने के कारण, विन्दु भी ईश्वर का रूप है। विन्दु-रूप को देखने से पूरी शान्ति मिलती है। अन्य रूपों में यह शान्ति नहीं मिलती। हाथ-पैरवाले भगवान होते हैं और बिना हाथ-पैर के भी भगवान होते हैं। यदि बिना हाथ-पैर के भगवान नहीं माने जाते, तो शिवलिंग में, शालीग्राम में, अंग-प्रत्यंग, हाथ-पैर कहाँ है? फिर इसको भगवान कैसे मानते हैं?

विन्दु को ईश्वररूप मानना, यह कोई अन्ध विश्वास नहीं है, क्योंकि जो सबमें रहता है, वह विन्दु में भी रहता है। इसलिए विन्दु

भी उसका रूप है। इसमें पूर्ण सिमटाव होता है, इससे अन्दर में प्रवेश होना होता है। स्थूल से सूक्ष्म में, बाहर से भीतर में प्रवेश होना होता हैं। यहाँ सूक्ष्म नाद ग्रहण होता है। यह ईश्वर-उपासना की विधि है। इसी विधि से सब लोग उपासना करें।

मैं न तो राम भजने के लिए मना करता हूँ, न कृष्ण भजने के लिए और न देवी भजने के लिए मना करता हूँ। पंच पापों को करने के लिए मना करता हूँ। ईश्वर का भजन करो, पाप क्षय हो जाएगा। गुरु, ध्यान, सत्संग और सदाचार; ये चार चीजें मिलकर संतमत है। संतमत सत्य के साथ है, असत्य के खिलाफ है। यह पुरानी से भी पुरानी बात है। असल में यही सनातन-धर्म है।

कोई कहे कि सनातन-धर्म में विन्दु-उपासना, नाद-उपासना नहीं है, मूर्तिध्यान नहीं है, जप नहीं है, कहे। जो नहीं जानते हैं, वे विन्दु-ध्यान और नाद-ध्यान का नाम सुनकर नया समझते हैं। यह भजन नित्य करो। मनुष्य के अतिरिक्त नीच योनि में नहीं जाने देगा। यह भक्ति का बीज है। यदि ऐसा नहीं होता, तो नाभादास, रविदास आदि कैसे सन्त होते?

भजन नित्य करो। भजन का संस्कार अपने में लगाना बहुत प्रकार के भय से बचाता है। योग महाभय से बचाता है। योग के आरम्भ का नाश नहीं होता। जन्म-जन्मान्तर पीछे करते हुए अन्त में मोक्ष दिलाकर ही छोड़ता है।

(महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर, १७.०७.१९६६ ई०)

१४. संसार दुःखमय है

प्यारे लोगो !

मुक्ति का अर्थ है—छूटकारा। कोई बन्धन में रहता है, तब उससे छूटना चाहता है। तो हमलोग बन्धन में बँधे हैं। जिस प्रकार कोई कारागार में हो, उसी प्रकार हमलोग शरीर और संसार के कारागार में बन्दी हैं। बन्दी नहीं समझो तो कैदी जरूर समझोगे। कारागार नहीं समझो तो जेल और कैदखाना जरूर समझोगे। हमारा दुर्भाग्य है कि अपनी भाषा को भूलकर अन्य भाषा को अपनाये हुए हैं।

यहाँ लोग जहाँ पर हैं यह सौर-जगत है। अर्थात् यहाँ से सूर्य-मण्डल जहाँ देखते हैं—स्थूल-मण्डल है। इसके सहित सूक्ष्म कारण, महाकारण; ये चार मंडल जड़ के हैं। आँख बन्द करने से अन्धकार मालूम होता है। लक्ष्मणजी ने परशुरामजी से कहा था—

मुँदिय आँखि कतहुँ कोउ नाहीं ।

अन्धकार में जो चीज है, वह आप नहीं पा सकते। वह चीज तभी मिलेगी, जब प्रकाश हो। आप चाहते हो कि मेरे शरीर में कोई रोग नहीं आवे। संयम से रहते हैं तो भी दैहिक, दैविक, भौतिक किसी-न-किसी प्रकार का रोग आ ही जाता है। सन्त कबीर साहब ने कहा है—

'तन धर सुखिया काहू न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहतु हौं, सबका किया विवेका हो।।
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरहीं वैरागीं हो।
शुकदेव अचारज दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागीं हो।।
जोगीं दुखिया जंगम दुखिया, तपसीं को दुख दूना हो।
आसा तृष्णा सबको व्यापै, कोई महल न सूना हो।।
साँच कहौं तो कोई न मानै, झूठ कहा नहिं जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो।।'

अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखीं विपरीतीं हो।
कहै कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखीं मन जीतीं हो।।'

भगवान श्रीराम संसार में रोने की लीला करते हैं। जब वे ही रोते हैं, तब औरों की बात ही क्या! बालक जन्म लेते ही रोता है। राजराजेश्वर का पुत्र भी रोते ही जन्म लेता है। श्रीराम ने प्रकट होकर कौशल्याजी को दर्शन दिया चतुर्भुजी रूप में। माता कौशल्या बोली, यह रूप छोड़िए और साधारण बच्चे का भेषधर कर रोइए।

'सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना'

संसार में आओगे, तो रोना-ही-रोना पड़ेगा। संसार दुःखमय है। इसमें जो आवेंगे, उनको रोना ही पड़ेगा। हिमालय के शिखर पर जाने से भी दुःख नहीं छूटेगा। शारीरिक, दैविक, भौतिक और मानसिक कोई-न-कोई कष्ट होगा ही।

शरीर और संसार की फाँस में हमलोग फँसे हैं। इससे छूटने का नाम है— मुक्ति। यदि कहो कि मरने पर शरीर छूट जाएगा, मुक्ति होगी, तो सो नहीं। स्थूल-शरीर छूटेगा, लेकिन सूक्ष्म-शरीर रहेगा। फिर स्थूल शरीर होकर दुःख होगा। यदि दान-पुण्य कर स्वर्ग जाओ तो भी फिर यहाँ आकर दुःख भोगना पड़ेगा। युधिष्ठिर ने कितने दान, पुण्य, तीर्थ किये, उसके बदले में स्वर्ग आदि भोगे। फिर उनको नरक भी देखना पड़ा, थोड़ा-सा झूठ बोलने पर। चित्त का स्वभाव है— मैं सुखी-दुःखी, भोग करनेवाला हूँ।

यह स्वभाव चित्त से कोई हटा नहीं सकता। जैसे देह से मैल को कोई हटा नहीं सकता। चाहे उबटन लगाकर स्नान करो। इस प्रकार चित्त में कर्ता-भोक्ता, सुखी-दुःखी होते रहना दुःख का कारण है।

अभी जो आपलोगों ने मुक्तिकोपनिषद् का पाठ सुना, उसमें

भगवान श्रीराम हनुमानजी को उपदेश देते हैं—मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, करनेवाला हूँ तथा भोगनेवाला हूँ— यह चित्त का धर्म है। यही बन्धन का कारण है। चित्त के धर्म पर जो काबू कर लेता है, वह जीवन-मुक्त है। शरीर रहते मुक्ति मिल गई, शरीर में हैं, किन्तु शरीर-संसार का बन्धन उस पर असर नहीं करता। ऐसे पुरुष का जब शरीर छूटता है, तो केवल स्थूल नहीं, जड़ के और तीनों शरीर छूट जाते हैं। घर के अन्दर जो आकाश है, घट-आवरण के टूटने से मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार जीवन-मुक्त के शरीर छूटने से वह घटाकाश की तरह मुक्त हो जाता है। तब वह विदेह मुक्त हो जाता है। राजा जनकजी जीवन-मुक्त थे। शरीर में रहते हुए भी वे विदेह कहलाते थे। जीवन-मुक्त पुरुष को अख्तियार है कि वह शरीर और संसार में रहें या नहीं। किन्तु नियम पालन के लिए अपने शरीर को रखे रहते हैं। जैसे हनुमानजी को ताकत थी कि मेघनाद की फाँस को काट दें; किन्तु ब्रह्म फाँस की मर्यादा रखने के लिए अपने बन्धकर रावण के दरबार में गए। उसी प्रकार जीवन-मुक्त परमात्मा के विधान का पालन करते हैं और संसार का उपकार करते हैं। तो यह जीवन-मुक्ति शरीर में रहते हुए ही होती है, मरने पर नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में लिखा है—*लहहिं चारिं फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग।*

संत कबीर साहब ने भी कहा है—

'जीवन मुक्त सो मुक्ता हो।'
जब लग जीवन मुक्ता नाहीं, तब लग दुख सुख भुगता हो।
देह संग ना होवै मुक्ता, मुए मुक्ति कहँ होई हो।।
तीरथ वासीं होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनीं सोई हो।
जीवत भर्म कीं फाँस न काटीं, मुए मुक्ति कीं आसा हो।।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हो।।

है अतीत बंधन तें छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो।
बिना अतीत सदा बन्धन में, कितहूँ जानि न पाई हो।।
आवागमन से गये छूटि कै, सुमिरि नाम अविनासीं हो।
कहै कबींर सोई जन गुरु है, काटीं भ्रम कीं फाँसीं हो।।'

इस प्रकार उपनिषद् और संत-वचन मिलाने पर एक ही मिल जाता है। यह एक जन्म की बात नहीं है। एक जन्म में नहीं होगा, तो दूसरे, तीसरे कई जन्मों में हो जाएगा। यह रामधन है।

दिन दिन बढ़त सबाई, रामधन कबहूँ न लागै काई।

श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय में पढ़िए—भगवान श्रीकृष्ण से अर्जुन ने कहा—'हे महाबाहो ! यदि ध्यान-योग में श्रद्धा रखे, परन्तु साधन में ढीला रहे तो ये योगभ्रष्ट-पुरुष किस गति को प्राप्त करेंगे?

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'ऐसे योग-भ्रष्ट पुरुष अपने स्वल्पातिस्वल्प ध्यानयोगाभ्यास के फल से दुर्गति को प्राप्त न होकर प्रथम स्वर्ग-सुख भोगेगा। पुन: इस पृथ्वी पर किसी पवित्र श्रीमान के घर में अथवा किसी ज्ञानवान योगी के घर में जन्म लेगा। पूर्व के अभ्यास-संस्कार से प्रेरित होकर ध्यानयोगाभ्यास में लग जाएगा। वह मोक्ष की ओर आगे बढ़ेगा और इस प्रकार अनेक जन्मों की कमाई के द्वारा पापों से छूटकर पवित्र होता हुआ परमगति (मोक्ष) को प्राप्त करेगा।

विद्यालय में जो विद्यार्थी पढ़ते हैं, पढ़ते-पढ़ते कितने की आधी उम्र खत्म हो जाती है, तब कहीं योग्य समझे जाते हैं। और इस जीवन-मुक्त अवस्था के लिए कहना कि जल्दी क्यों नहीं होती है। जिस तरह विद्यार्थी धीरे-धीरे पढ़ते-पढ़ते योग्य होते हैं, उसी प्रकार यह अवस्था प्राप्त करने के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके अनुभव-ज्ञान में जीवन-मुक्त की दशा प्राप्त करेंगे।

(पटेगना, पूर्णियाँ २२.१२.१९५२ ई0)

१५. मूर्ति में ईश्वर है, मूर्ति ईश्वर नहीं

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता!

सबसे गहन विषय जो हो सकता है, वह है—ईश्वर स्वरूप का निर्णय। जो लोग आस्तिक कुल में जन्म लिए हैं, उनको ईश्वर मानने में कोई अड़चन और सन्देह नहीं है। कोई अपने माता-पिता या बूढ़े के कहने से ईश्वर को मानते चले आए हैं। उनके बूढ़े लोगों ने ईश्वर के जिस-जिस नाम को लेकर पुकारा है, उन्होंने उसी को जाना है। उनको यह जनाया गया है कि ईश्वर का स्वरूप क्या है। लोग श्रद्धा से मानते चले आए हैं। ईश्वर-स्वरूप का निर्णय विशेष पढ़े-लिखे लोग विवेचनापूर्ण करके जानते हैं। लोग कहते हैं कि यह बात सबकी समझ में नहीं आएगी, इसलिए उनको कहने से क्या लाभ? किन्तु जो नहीं समझेंगे, उनको यदि यह विषय कभी समझाया ही नहीं जाय, तो वे कब समझेंगे? इसलिए साधु-सन्तों ने इसको समझा और कहा कि इसको बारम्बार समझाओ।

केवल विद्यालयों में ही जाकर ज्ञान नहीं होता है, सुनकर भी ज्ञान होता है। पहले कोई पुस्तक नहीं थी। संसार में सबसे पुराना ग्रन्थ लोग वेद को कहते हैं। लेकिन जब वेद ग्रन्थ-रूप में नहीं था, तब उसका ज्ञान ऋषियों के मस्तिष्क में था। जब अक्षर नहीं बना था, उस समय जितनी विद्याएँ थीं, लोगों को सुना-सुनाकर सिखलाई जाती थीं। लोगों की स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी। लोग सुन-सुनकर समझ लेते थे, सीख लेते थे। ज्ञान और विद्या पहले, पुस्तक पीछे हुई । आज भी जो पुस्तक लिखी जाती है, वह ज्ञान पहले मस्तिष्क में रहता है, फिर पुस्तक मेंलिखते हैं। लोगों की स्मरण-शक्ति जब कम हो गई, तब लोगों ने उस ज्ञान को रखने के लिए अक्षर बनाया और पुस्तक का रूप दिया। आज भी कितने ज्ञान हैं, जो पुस्तक में नहीं हैं।

राहुल सांकृत्यायन से भेंट हुई मुरादाबाद से आते समय। उन्होंने तालपत्र पर लिखे हुए अक्षर दिखलाए। पहले भोजपत्र पर, ताम्रपत्र पर लिखते थे, फिर कागज बना और उस पर लोग लिखते हैं। पहले मस्तिष्क ही पुस्तक था। वह शक्ति आज भी है। आज भी कुछ स्मरण शक्ति है। महर्षि दयानन्द के गुरु स्वामी विरजानन्दजी जन्मान्ध थे। वे बड़े विद्वान थे। जिस गुरु के शिष्य स्वामी दयानन्द थे, वे गुरु कैसे थे, सो जानिए। विद्या कैसे आती है इस पर कहा—

ऊँचे विद्यालयों में लड़के पढ़ते हैं, अध्यापक कहते हैं, लड़के सुनते हैं, याद रखते हैं और लिख भी लेते हैं। साधुलोग जो सत्संग करते हैं, इसको याद रखो अथवा लिख लो। यदि लिखना नहीं जानते हो, तो सुनते-सुनते बहुत सीख जाओगे। हमारे चाचा के पिता एक सुग्गा पालते थे। वह सुग्गा सिखाने पर बहुत बातें सीख गया था। संयोग से एक दिन रात में चोर आया। सुग्गा ने हल्ला किया, *'बाबा हो चोर'* लोग जग गए, चोर भाग गया। पक्षी को मनुष्य का संग करते-करते ज्ञान हो गया कि चोर आया है। उसको यह बात सिखलाई नहीं गयी थी। पक्षी जब सीख लेता है, तो मनुष्य बार-बार सुन लेने पर क्यों नहीं सीख लेगा?

हमारे यहाँ एक बड़ा भारी काला दाग है कि सभी वर्णों के लोगों को यह उपदेश मत दो। किन्तु संतलोग सब ही दिन उदार रहे। *'चहुँ बरना को दे उपदेश'* गुरु नानकदेव ने कहा। आपको इसका इच्छुक होना चाहिए। इच्छा नहीं करते हैं, इसीलिए इससे दूर रहते हैं। लोग राम, शिव, हरि आदि को ईश्वर समझते हैं परन्तु उनसे स्वरूप पूछिए तो चुप हो जाएँगे। कोई सगुण मानते हैं, कोई निर्गुण मानते हैं। दूसरा दल कहता है कि क्या ईश्वर है? एक नास्तिक विद्वान ने मुझसे पूछा कि 'आपका क्या प्रचार है? मैंने कहा— 'ईश्वर—भक्ति।' उन्होंने पूछा—'क्या, ईश्वर है?' मैंने कहा—हाँ'।

उन्होंने कहा कि 'मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ।' मैंने कहा—'नहीं मानिए'। उन्होंने पुनः मुझसे पूछा कि तब मेरे लिए आपका क्या प्रचार है? मैंने कहा कि 'आप तो पढ़े-लिखे हैं, विद्वान हैं, समेटकर बोलिये कि आप क्या चाहते हैं? वे चुप हो गये। तब मैंने कहा—'यदि आपको ज्ञान और सुख मिल जाए तो कोई इच्छा रहेगी ?' उन्होंने कहा—'नहीं' । मैंने कहा—आपके लिए मेरा यही प्रचार है कि ज्ञान और सुख होता है ध्यान से। आप ध्यान करेंगे तो ज्ञान होगा, सुख होगा और ध्यान के अन्त में ईश्वर की प्राप्ति होगी। ध्यानाभ्यास से मन की एकाग्रता होती है। इससे मन में शान्ति आती है और ज्ञान भी बढ़ता है। मुझे विश्वास है कि आप यदि ध्यान के अन्त में पहुँचिएगा तो कहिएगा कि ईश्वर भी है।'

लोग कहते हैं कि एक प्रह्लाद के लिए भगवान ने अवतार लिया। एक द्रौपदी के लिए वस्त्र-हरण के समय भगवान ने अवतार लिया। आज बंगाल में, पंजाब में क्या-क्या हो गया, लेकिन भगवान कहाँ हैं? क्या आजकल भगवान ने वैसा करना छोड़ दिया है? किन्तु गुण, कर्म से ईश्वर का निर्णय नहीं हो सकता । कितने विद्वानों ने कहा कि ईश्वर श्रद्धा में है, तर्क में नहीं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहु भवानी।।

(रामचरितमानस)

किन्तु ऐसी बात नहीं। बिल्कुल श्रद्धा-ही-श्रद्धा नहीं, तर्क भी है। अभी पाठ में आपलोगों ने सुना—

इहाँ मोह कर कारन नाहीं। रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं।।

तर्क में बतलाया—

व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता। अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनबद्य अतीता।।
प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी।।

तब कहा है कि— 'इहाँ मोह कर कारन नाहीं।।
और कहा — 'अज विज्ञान रूप बल धामा।

अज = अजन्मा। व्याप्य = जिसमें कुछ समावे। व्यापक = जो समावे। समूचा प्रकृति—मंडल व्याप्य है, परमात्मा उसमें व्यापक है। अखंड = जिसका टुकड़ा नहीं हो। अनन्त = जिसकी सीमा कहीं नहीं, जो असीम है। अगुन = गुण—रहित, तीन शक्तियों—गुणों के परे। संसार में तीन गुणों का खेल है। एक वृक्ष, एक पहाड़ या छोटे जीव या मनुष्य का शरीर, या (देवता पर विश्वास रखते हो तो) देवता का शरीर—इन सबमें तीन गुणों का काम है। रजोगुण, उत्पादक-शक्ति, सत्वगुण, पालक-शक्ति और तमोगुण, विनाशक-शक्ति। अगुण=तीन गुणों से रहित को कहते हैं। जो व्याप्य में व्यापक है, वह परमात्मा है। किन्तु उसी में वह समाप्त नहीं होता, उससे परे भी है। इसीलिए कहा—

प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी।।

इन सब बातों को बतलाकर कहते हैं कि—

इहाँ मोह कर कारन नाहीं।

अब यहाँ तर्क होता है कि व्याप्य में व्यापक अर्थात प्रकृति-पार अनन्त हो सकता है कि नहीं। पहले एक अनन्त तत्त्व पर विचार करो कि है कि नहीं? यदि कहो कि कोई भी अनन्त नहीं होगा, सब सान्त-ही-सान्त है। तो प्रश्न होगा कि तो सब सान्तों के बाद में क्या है? सब खेतों की सीमा है, सब खेतों को जोड़कर भूमंडल होता है, भूमंडल सान्त हो गया। सारे सान्तों के पार में क्या है? जबतक एक अनन्त नहीं कह दो, तबतक यह प्रश्न सिर से उतर नहीं सकता। इसलिए एक अनन्त का मानना अनिवार्य है। अनन्त दो नहीं हो सकता। यदि कहो कि एक दूसरे में समाते हुए अनन्त है। तब प्रश्न होगा कि दोनों तत्त्वरूप में एक है कि दो? यदि

एक दूसरे में घुसता है तो जब उसमें घुसता है, उसमें पोल है, उसका खंड हो सकता है। उसके अणु-अणु में वह है, तब वह परमाणु भी उसी से बना होगा, इस तरह अनन्त एक ही होगा, दो नहीं। एक एम. ए. बी. एल ने प्रश्न किया कि 'यदि वह अनन्त है तो फिर उसको ईश्वर क्यों मानूँ?' तो उत्तर होगा—'अनन्त से बाहर कोई नहीं हो सकता। जब सब उसके अन्दर में है, तो वह ईश्वर न हुआ तो क्या ? जिसके अधीन सब हो।' अनन्त के पहले का कुछ नहीं हो सकता। सबसे पहले का जो है, उसका जन्म नहीं हो सकता, इसलिए वह अज है। अनन्त होने के कारण वह सर्वव्यापी है। जो जितना अपना विस्तार विशेष रखता है, वह उतना सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म का अर्थ छोटा टुकड़ा नहीं, बल्कि आकाशवत्—सूक्ष्म। एक सेर बर्फ लो। उससे एक सेर जल का विस्तार ज्यादा होगा। यदि उसको वाष्प में परिणत किया जाय, तो उसका विस्तार और विशेष होगा। जो जितना सूक्ष्म होगा, वह उतना विशेष पतला होगा। जो जितना विशेष महीन होगा, वह अपने से स्थूल में स्वाभाविक ही समाया हुआ होगा। जैसे पृथ्वी में जल, जल में अग्नि, अग्नि में हवा और हवा में आकाश। जो सबसे विशेष सूक्ष्म है, वह सबमें व्यापक होगा। इसीलिए कहा—

प्रकृति पार प्रभु सब उर वासी।

प्रकृति कहते है उस मशाले को, जिससे यह सब कुछ बनता है। बनने में दो भाग करो तो एक पिण्ड, दूसरा ब्रह्माण्ड होगा। पिण्ड-ब्रह्माण्ड में तीन गुणों का खेल होता है। बालकपन का शरीर कहाँ चला गया? शरीर गया नहीं, बल्कि बदल गया हैं । यदि तीनों गुणों का काम नहीं हो तो रूप नहीं बदल सकता। उत्पादक-शक्ति का काम है— उत्पन्न करना, बदलते जाना। तमोगुण का काम है—नाश करना। ठहरा हुआ है—यह सतोगुण का काम है। तीनों का काम

संग-संग होता है। जिसने जन्म नहीं लिया, उसमें तीन गुणों का काम कैसे होगा? इसलिए वह अज है। कार्य और कारण को समझने के लिए प्रकृति कारण-रूप है और कार्यरूप में सब चीजें बन गई हैं । त्रयगुणों के समिश्रण-रूप को प्रकृति कहते हैं। बराबर-बराबर शक्तियों के मिलाप को प्रकृति कहते हैं। इसकी जड़ में तीन गुण हैं। इसलिए अपरा-प्रकृति,अष्टधा—प्रकृति इसको कहते हैं। कार्यरूप का जितना फैलाव है, उससे कारणरूप का विशेष फैलाव होता है। जहाँ से कुछ बनने का आरंभ होता है, वह कारण है। उसके बाद जब कुछ बनता है, तब सूक्षम कहलाता है। अद्वैतवादी को पहले से दूसरा तत्व नहीं जँचता है। परमात्मा से प्रकृति उपजी हुई है। प्रकृति को अनाद्या भी कहते हैं, इसलिए कि प्रकृति के होने से समय होता है। प्रकृति नहीं होने के पहले देश-काल बने, नहीं हो सकता। जब देश और काल नहीं था, तब प्रकृति हुई। इसलिए इसको अनाद्या कहते हैं। प्रकृति देश-काल ज्ञान से अनादि और उपज-ज्ञान से सादि है। परमात्मा अनादि के भी आदि हैं। *'अनादिंर आदिं परम कारण।'* जो असीम है, सर्वव्यापी है, त्रयगुण-रहित है, अज है, ऐसा तत्व टूटनेवाला नहीं हो सकता। इसलिए अखंड है। इस तरह ईश्वर का स्वरूप है। किन्तु उसके कार्य से ईश्वर माना जाय, हो नहीं सकता। ससीम बुद्धि से असीम परमात्मा के कार्य का वर्णन किया जाय, नहीं हो सकता। बुद्धि रबड़ का एक थैला है। रबड़ के थैले में हवा भरो, हवा विशेष भरने से थैला फट भी सकता है। उसी तरह बुद्धि को समझो। ईश्वर को सुगम रीति से जानने के लिए क्या करो? बाहर में आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, भीतर में मन है। मन से कुछ करते हैं। इसको बुद्धि से विचारते हैं। बुद्धि पीछे बनी। फिर मन और पीछे बाहर की इन्द्रियाँ बनीं। जो जितना पीछे बना, वह उतना स्थूल है। बुद्धि सूक्ष्म है । उससे स्थूल मन है।

उससे और इन्द्रियाँ स्थूल हैं। बुद्धि को सारथी, मन को लगाम और इन्द्रियों को घोड़े कहा गया है। सबसे सूक्ष्म परमात्मा है। स्थूल यंत्र से सूक्ष्म तत्व का ग्रहण नहीं हो सकता। हाथ में बाँधने की घड़ी और दीवार में टाँगने की घड़ी; दोनों में एक ही तरह के यंत्र हैं, किन्तु दोनों घड़ियों में एक की औजार से काम नहीं होता। बड़ी घड़ी के लिए बड़े-बड़े और छोटी घड़ी के लिए छोटे-छोटे यंत्र काम में लाते हैं। परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म है, इन्द्रियाँ अत्यन्त स्थूल हैं। इन स्थूल इन्द्रियों से सूक्ष्म परमात्मा ग्रहण होने योग्य नहीं है। सामने में जो प्रत्यक्ष दृश्य है, उसको ग्रहण करने के लिए आँख है। किन्तु आँख को फोड़कर कान से देखना चाहें तो नहीं होगा। कान से शब्द सुन सकते हैं। पाँच विषयों को ग्रहण करने के लिए पाँच इन्द्रियाँ हैं। रूप क्या है? जिसको आँख से ग्रहण करें। शब्द क्या है? जिसको कान से सुन सकते हैं। इसी तरह ईश्वर क्या है? जो केवल चेतन आत्मा से ग्रहण होता है। यदि कहो कि प्रत्यक्ष दिखलाओ तो प्रत्यक्ष आँख से नहीं हो सकता। मैं इसकी क्रिया-युक्ति बतलाता हूँ। अपने को शरीर-इन्द्रियों से छुड़ाकर कैवल्य-दशा प्राप्त करो, तब प्रत्यक्ष होगा। इसके लिए मन को एकाग्र करो। मन को एकाग्र करने के लिए लोग मोटे-मोटे काम करते हैं, परन्तु पूरा एकाग्र नहीं होता। पूर्णता के लिये ध्यानाभ्यास करो। ध्यानाभ्यास का अर्थ यह नहीं कि मोटे-मोटे कर्मों को नहीं करो। मोटे-मोटे कार्यों—सत्संग, पूजा-पाठ से भी सिमटाव होता है। विशेष सिमटाव मंत्र-जप से होगा। इससे भी विशेष सिमटाव मूर्ति-ध्यान से होगा। भगवान बुद्ध की मूर्ति को भिक्षु लोग बनाते थे। लोगों ने पूछा कि भिक्षु! यह क्या करते हो? उन्होंने कहा कि 'इस मूर्ति को बनाते-बनाते इसका रूप मन में छप जाएगा।' इसी के लिए हमारे यहाँ प्रतिमा-पूजन है, केवल प्रणाम करके चलने के लिए नहीं। प्रतिमा देखो और उसका ध्यान करो। एक

पंडित ने मुझसे पूछा कि आप प्रतिमा को मानते हैं कि नहीं? मैंने कहा कि 'मानता भी हूँ और नहीं भी मानता हूँ। ध्यान करने के लिए प्रतिमा को मानता हूँ और मेला लगाकर पैसा कमाने के लिए नहीं।

प्रतिमा का ध्यान क्यों किया जाय, इसका भी उत्तर है। एक मौलवी थे। उन्होंने कहा कि 'हिन्दू लोग बहुत ईश्वर को मानते हैं।' मैंने उनसे कहा कि 'आप एक शरीर में रहते हैं, इसलिए आपका शरीर है। खुदा सबमें रहते हैं, इसलिए सब शरीर खुदा के हैं। इस तरह हिन्दू लोग सब रूपों को मानकर पूजते हैं। ईश्वर सबमें रहते हैं' जैसे तुम घर में रहते हो, तुम घर नहीं हो। मूर्ति में परमात्मा है, मूर्ति परमात्मा नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ कहकर इसको अच्छी तरह समझाया गया है। मूर्ति-पूजा इसलिए है कि शक्ल का ध्यान करो। मूर्ति में ईश्वर है; मूर्ति ईश्वर नहीं है। मूर्ति का ध्यान करो, इससे एकाग्रता होगी, किन्तु इससे पूर्ण सिमटाव नहीं होगा।

श्रीमद्भागवत के एकादश अध्याय में उद्धवजी को भगवान श्रीकृष्णजी ने कहा कि 'पहले मेरे सर्वांग शरीर का ध्यान करो, फिर मेरे मुस्कान युक्त मुखारबिंद का, फिर शून्य में ध्यान करो।' भगवान ने शून्य-ध्यान करने कहा। विन्दुध्यान शून्य-ध्यान क्यों है? विन्दु कहते हैं—परिमाण शून्य, नहीं विभाजित होनेवाले चिह्न को। यह शून्य न हो गया तो क्या हुआ। इस प्रकार विन्दु-ध्यान से पूर्ण सिमटाव होगा। सिमटाव में ऊर्ध्वगति होगी। उर्ध्वगति में उठते-उठते कैवल्य-दशा प्राप्त होगी। फिर ईश्वर की प्रत्यक्षता होगी। ईश्वर-स्वरूप का ज्ञान हो, फिर उसकी पहचान हो। पहले जानकर ज्ञान हो, फिर पहचान कर ज्ञान हो। जबतक पहचानकर ज्ञान नहीं हो, तबतक कल्याण नहीं। इसके लिये आपका चरित्र बहुत अच्छा होना चाहिए। झूठ बोलना, चोरी करनी, नशा खाना, व्यभिचार करना और हिंसा करनी—इन पाँचों महापापों को छोड़ने से चरित्र अच्छा होगा।

(सत्संग-मंदिर, तेतराहीं, पूर्णियाँ , २३.०६.१९५५ ई0)

१६. संतमत नहीं सिखाता कि गृहस्थी छोड़ दो

प्यारे धर्म-जिज्ञासु लोगो !

यह संतमत असल में संतमत एक ही है। परन्तु यह 'संतमत' कहने का तात्पर्य यह नहीं कि इसको किसी दूसरे संत के मत से फुटा देते हैं। जैसे कबीर साहब का मत, गुरुनानक साहब का मत, तुलसी साहब का मत, राधास्वामी साहब का मत आदि सब एक ही हैं। यह संतमत कहने का मतलब—हमारे गुरु महाराज जो प्रचार कर गए थे सो। उन्होंने कोई नई बात नहीं कही। उन्होंने वही बात कही, जो संतों ने कही। ऐसा कुछ प्रचार हो गया है कि लोग समझते हैं कि वैरागियों का मत है, सो तो कभी नहीं। बाबा नानक ने कहा—राज्य करता हुआ राज्य में राजा, तप करता हुआ तप में श्रेष्ठ तपी और गृहस्थ-आश्रमी बनकर गृहस्थ भोग में भोगी बनते हुए उस भोग में, योगी, सब-के-सब ध्यान करते थे, यही मूल बात है। उसी ध्यान की विधि देकर हमारे गुरु महाराज ने कहा—सब कोई ध्यान करो। चाहे राजा हो, गृही वा सद्गृहस्थ हो, तपी हो और जो गृहस्थी भोग भोगकर रहता है, उसको करते हुए करो। सब-के-सब ध्यान करो। उनको मालूम था। उन्होंने अपने को भी गृहस्थ-आश्रम में रखा। कौन? गुरु नानक साहब और कबीर साहब के लिए है कि गृहस्थ बनकर उन्होंने सन्तान पैदा किया कि नहीं, कहना कठिन है। कबीर-पंथी लोग कहते हैं कि ब्रह्मचारी बनकर वे ईश्वर-भक्ति का प्रचार करते थे। लेकिन बहुमत है कि वे गृहस्थ थे। असली बात कौन जानता है? आज से छह सौ वर्ष पूर्व हो गए। उनकी जीवनी ठीक-ठीक कोई नहीं कह सकते।

जो कहते हैं कि *'गृहीं कारज नाना जंजाला।'* जिसने अपने को इसमें रखा उनके लिए कुछ कहना नहीं है। चाहे वे कबीर-पंथी हों वा दूसरे। वे जो काम करते थे, उसमें उनका मन लगता था। कपड़ा बिनते थे, रोजगार करते थे। उसी से अतिथि सत्कार भी करते थे। आपलोगों को जैसा

विचार आवे, सो मानिए। चाहे बालब्रह्मचारी कहिए। बालब्रह्मचारी तो वे थे आज भी उनकी डीह को लोग देखने जाते हैं। उसको नीरु का टीला कहते हैं। नीरु के काम को ही कबीर साहब ने अपनाया। कितने संत गृही-काम करते रहे, कितने संत गृही-काम छोड़कर अपना साधन -भजन भी करते थे और सदुपदेश भी संसार को देते थे।

आपलोगों ने देखा होगा कि इस पार से उस पार जाने के लिए सरयू नदी पर एक पुल बन्धा हुआ है। वह पुल माँझी का पुल कहलाता है। वहाँ एक संत मुंशी रहते थे। उनका नाम था धरनी दासजी। वे एक मुंशी आदमी थे। एक क्षत्रिय बाबू के यहाँ क्लर्क या मुहरील का काम करते थे। मुशहरा पाते थे—नौकरी करते थे। उन्होंने बड़े अच्छे-अच्छे पद कहे हैं—

धरनीं अधरे ध्यान धरु, निसिवासर लौलाइ।
कर्म कींच मगु बींच है, (सो) कंचन गच हवै जाइ।।

बहुत अच्छे-अच्छे पद कहे। एक दिन उन्होंने पागल की तरह किया। स्याही को कागज पर उलटकर हाथ से लेपने लग गए। बाबू ने देखा तो कहा कि मुंशी जी आप पागल हो गए।' उन्होंने कहा—'नहीं ! जगन्नाथ के पट में आरती करते आग लग गई और मैंने उसी में पानी डाल दिया।' उसको ठीक से जाँच करने के लिए बाबू ने जगन्नाथपुरी में घुड़सवार को भेजा। वह दिन, वह तिथि बताई। लोग वहाँ गए तो बताया। तो लोगों ने कहा कि 'हाँ ! ठीक ही एक आदमी आये थे और पानी डालकर बुझा दिए। जगन्नाथजी की पट में आग लग गई थी।' संत धरनी दासजी जाति के कायस्थ थे। लिखा-पढ़ी करते उन्होंने सिद्धि पाई। संत पलटू दासजी दूकान पर बैठकर ही भजन करते थे, सत्संग करते थे। फिर वे दूकान छोड़कर भजन-सत्संग करने लगे। साधु बनकर भिक्षाटन करें, ऐसा वे नहीं करते थे। कितने संत भिक्षाटन किए, कितने

भिक्षाटन का काम नहीं किए। इस तरह संत लोग हुए हैं।

आपलोग भी देखते हैं कि हमारे गुरु महाराज ने पहले डाकखाने का काम किया, पीछे उन्होंने छोड़ दिया। मेरी अपनी बात सुनिए। मेरा छोटा मुंह, छोटी बुद्धि यही बात कहती है कि मैंने अवश्य ही घर का काम छोड़ दिया। लेकिन अपने पालन-पोषण के लिए खेती का काम किया। अभी भी मेरा खेत है। सत्संगी के जिम्मे है। वे उपजा कर देते हैं। वे मेरे बेटे और मैं उनका बाप। कुछ दिन ऐसा भी था कि मैं पूजा ग्रहण करता था। पैसे लेता था। उस बात को मैंने छोड़ दिया। इस तरह बनते-बनते मैं नहीं ऐसा कहता कि कबीर साहब या गुरुनानक साहब के जैसा बन गया हूँ। मैं तो उनकी चरण-धूल लेने योग्य भी नहीं हूँ।

संतमत नहीं सिखलाता है कि घर का काम-गृहस्थी यानी बाल-बच्चों का संग छोड़ दो और ध्यान-भजन करो। यह बताता है कि स्त्री, बाल-बच्चों के साथ रहो, परिश्रम से उपार्जन करो और ईश्वर-भजन भी करो। गुरु नानकदेव ने कहा है—

राज महिं राज, जोग महिं जोगीं। तप में तपींसुर, गृहस्थ महिं भोगीं।
ध्याय भक्तः सुख पाया। नानक तिंस पुरुष का किंन अन्त न पाया।।'

संतमत का बहुत थोड़ा सिद्धान्त है और बहुत भी। थोड़ा यह कि गुरु करो, ध्यान करो और गुरु-सेवा करके ध्यान करने का यत्न लो। गुरु महाराज कहते थे—बहुत सिद्धान्त कहोगे तो लोगों को याद नहीं रहेगा। कुछ बेसी तो हो ही गया। याद के लिए इतना कहा कि गुरु, ध्यान और सत्संग। इसका विस्तार बहुत है। पुस्तक मेरी मौजूद है, लेकर आपलोग पढ़ सकते हैं और मिला सकते हैं, संतमत के विचार से। संतमत क्या सिखलाता है? मैंने कहा—किसी तरह भजन करो, यही जरूरी है। गुरु महाराजजी ने ध्यान करने को भजन करना कहा। *(नन्दलालपट्टी, बाँका १७.०३.१९७२ ई0)*

१७. ईश्वर इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

जैसे शिशु को, छोटे बच्चे को एक ही विश्वास रहता है कि मेरे शुभ के लिए, सारी मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिए केवल मेरी माता ही हैं—उसी तरह भक्तों को, साथ-साथ मुझको भी यह विश्वास है कि मनुष्य के सब सुखों की एक ही माता है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरी और नहीं—एक-ही-एक माता ईश्वर की भक्ति है। ईश्वर की भक्ति—रूपा माता की गोद में जो अपने को रखता है, वह अशुभ कभी नहीं देखता। यही जानकर इसका दृढ़ विश्वास करके संतों ने संसार के लोगों के वास्ते जो शुभ बनाया है, वह शुभ के हेतु ईश्वर की भक्ति को ही बतला दिया है।

ईश्वर की भक्ति से मनुष्य शुभ-ही-शुभ देखता हुआ अन्त में मोक्ष को पाता है। संसार के बँधनों में,—जालों में फँसा हुआ मानव शुभ की मात्रा से अधिक अशुभ देखता है। और अशुभ देखते हुए वह संसार के जालों में रहकर कभी तृप्ति नहीं पाता है। तो भक्तगण संतजन कहते हैं कि ईश्वर की भक्ति सब सुख देनेवाली है। सब शुभ के लिए एक ही माता यही है। इस माता को अपना लो—इस माता की गोद में हो जाओ। इसी हेतु से हमारे गुरु महाराज ने ईश्वर की भक्ति का प्रचार जबतक उनका शरीर रहा, तबतक उन्होंने किया और हमलोगों को भी उन्होंने यही प्रचार करने का उपदेश दिया। तो दैनिक सत्संग और अखिल भारतीय वार्षिक सत्संग के द्वारा इसका प्रचार होता रहता है। इसका मूल कारण गुरु-आज्ञा है, मुझे इसमें बड़ा विश्वास है। आपलोगों से मैं कहता हूँ कि ईश्वर की भक्ति अच्छी तरह से समझिए। जिन माता के गर्भ से आपने

जन्म लिया है, वह माता आपके वास्ते बहुत ही सुखदायिनी और शुभ में रखनेवाली अवश्य हैं; परन्तु भक्ति–रूपा माता आपको जिस सुख में रखेंगी, वह सुख निराला है।

भौतिक जगत का सुख जन्मदात्री माता अवश्य देती हैं, परन्तु भौतिक जगत में केवल सुख-ही-सुख मिलें—इसका विश्वास न है, न कभी हुआ और न कभी होगा, होना भी नहीं चाहिए। क्योंकि भौतिक पदार्थों में ऐसा गुण नहीं कि किसी को सुख-स्वरूप कर दे। परन्तु ईश्वर की भक्ति में यह गुण है, तो ईश्वर की भक्ति अवश्य करनी चाहिए।

हमलोगों का देश जो प्राचीन काल से भारत कहके या आर्यावर्त कह के विख्यात है, वही देश फिर हिन्दुस्तान कहा जाने लग गया, यह कलयुगी बात है। कलयुग का भी बहुत समय गुजर गया, तब की बात है। आपलोग जब कभी-कभी कर्मकाण्ड विषयक यज्ञ करने को होते हैं और करने लगते हैं तो आपके पुरोहित अवश्य ही उसमें आपके देश के नाम को याद करवा देते हैं—आर्यावत्ते, भरतखण्डे, जम्बूद्वीपे—ये सब नाम याद करवाते हैं, परन्तु 'हिन्दुस्ताने' नहीं याद करवाते हैं। तो यह कर्मकाण्ड की याद दिलवाना—हमारे लिए बड़ा अच्छा है—अपने साबिक नाम को हम जानते हैं। अगर यह नहीं होता तो आज पहले का नाम इस तरह गुप्त हो जाता कि जैसे अपने होकर किसी को स्वप्न में वह भूल जाय बिल्कुल। तो इस अपने नाम को भी आपलोग न भूलें। और जब से अपना देश है, तब से अपने कर्म का जो ग्रन्थ है—परम ज्ञानमय ग्रन्थ है, उसी को वेद कहते हैं।

वेद के अन्दर ईश्वर की मान्यता—ईश्वर में आस्था का बहुत जोरों के साथ विश्वास दिलाया गया है। वेद केवल यही बता देता है कि—है—सो नहीं। वेद बता देता है कि ईश्वर है, तुम प्रत्यक्ष में पा भी

सकते हो। है, परन्तु अव्यक्त है। व्यक्त पदार्थ ईश्वर नहीं है। व्यक्त पदार्थ नहीं हैं। व्यक्त पदार्थ माया है। जो अव्यक्त है—वह ईश्वर है। वह अव्यक्त, अव्यक्त ही नहीं रह जाएगा। अगर तुम उसकी भक्ति ठीक-ठीक करो तो वह तुम्हारे लिए व्यक्त होगा। माया—पदार्थ व्यक्त मालूम होता है। इन्द्रियों के ज्ञान में इन्द्रियाँ तुम्हारी देह के साथ-साथ तुम्हारे सब अधीनस्थ चीजें हैं। इनके द्वारा तुम मायिक तत्वों को ही जान सकते हो। मायिक तत्वों को जानने का जो यन्त्र है, उसी यन्त्र से तुम निमार्यिक तत्व को भी जानो, ऐसा विश्वास रखना पागलपन है। जिस यन्त्र से तुम मायिक तत्वों को जानते हो वह यन्त्र तुम्हारे शरीर के साथ—साथ लगी हुई इन्द्रियाँ हैं, बाहर और भीतर। यह ज्ञान मेरे गुरुजी ने मुझको सिखलाया है। इतना ही नहीं—उन्होंने सिखलाया अवश्य, परन्तु केवल उन्होंने ही सिखलाया सो नहीं— उन्होंने ही बतलाया कि यह ज्ञान वेदों का है। तो अव्यक्त ईश्वर जो मायातीत है, अव्यक्त है, इन्द्रियों के प्रत्यक्ष कभी होने योग्य नहीं है। इन्द्रियों में जो ज्ञान है, वह ज्ञान तुम्हारा ही ज्ञान है। तुम अपने क्या हो, इसको नहीं सोच समझ सकते हो। इसी वास्ते अपने को तुम समझते हो कि यदि इन्द्रियाँ न हों, मैं लूज हूँ—मैं ज्ञान रहित हो जाऊँगा। ऐसा कुछ समझते हो तो यह तुम्हारी बड़ी गलती है। इन्द्रियों का खोल जैसे-जैसे तुम्हारे ऊपर से उतरेगा, वैसे-वैसे तुम्हारा ज्ञान विशेष जगता जाएगा। यदि इन्द्रियों के खोल सारे के सारे दूर हो जायँ, तुम ऐसे हो जाओ कि जैसे वस्त्रहीन शरीर अर्थात् तुम ऐसे हो जाओ कि तुम शरीर-विहीन केवल तुम-ही-तुम अर्थात् केवल आत्मा-ही-आत्मा । अगर ऐसा हो जाओ तो तुम सर्व ज्ञानमय होओ। तुम सर्वज्ञ होओ। तुम से छिपा कुछ नहीं है। बिना यन्त्रों के, बिना इन्द्रियों के सब कुछ तुम जानते हो। अगम

तक पहुँचा हुआ है। अगम की पहचान करनेवाला है। तुम्हारे ज्ञान से बढ़कर ज्ञान नहीं है। अगर तुम अपना ज्ञान पा जाओ तो फिर तुमको कोई और सिखलानेवाले की जरूरत है—यह नहीं मालूम पड़ेगा। तुमको इसकी आवश्यकता नहीं रहेगी कि तुम किसी के पास जाकर पूछो कि यह बात कैसी है—यह बात कैसे होगी। अव्यक्त किस तरह व्यक्त होगा, तुमको पूछना नहीं होगा, ईश्वर अव्यक्त है, इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है—इसी को कहते हैं अव्यक्त।

राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।
सोइ सच्चिदानन्द घन रामा। अज विज्ञान रूप बलधामा।।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवंता।।
निर्मल निराकर निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा।।
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनाशी।।

ईश्वर का स्वरूप यह है। इसके वास्ते जो दर्शन करना चाहेगा, वह अपने को बिल्कुल शरीर आदि से हटा ले। कहने में तो कुछ ऐसा लगता है कि हेय बात है, लेकिन हेय बात नहीं—बड़ी ऊँची बात है। तुम अपने को बिल्कुल नंगा कर लो। जो यह शरीर का पहनावा तुम्हारे पर रखा गया है, यह पहनावा बड़ा दुखकर है। स्थूल-शरीर, सूक्ष्म-शरीर, कारण-शरीर महाकारण-शरीर, यह बड़ा दुखकर है। इन सबसे रहित होकर *'चिदानंदमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी'* इस स्वरूप में हो जाओगे। इस स्वरूप को फिर कहीं से खोजकर नहीं लाना पड़ेगा। न गुरु महाराज को जाकर कहना पड़ेगा कि हमको इसी स्वरूप में ला दीजिए। वह कहेंगे कि बच्चा तुम खुद साधन करोगे, तुम तो यह हो ही। ऐसा जब हो जाओगे, तब अव्यक्त ईश्वर

ऐसा व्यक्त होगा, जैसे इन्द्रियों के सामने सूर्य भगवान व्यक्त हो जाते हैं। रात भर अव्यक्त रहते हैं और प्रात: काल होते ही सूर्य भगवान व्यक्त हो जाते हैं, लेकिन फिर भी जो जन्मांध हैं उन बेचारों के लिए अव्यक्त मालूम पड़ते हैं। सूर्य यह तो नहीं कर सकते हैं कि अपनी गर्मी से उसको बता दें कि हम सूर्य आ गए और तुमको गर्मी मालूम हो रही है।

संत लोग बतला गए हैं कि इस अव्यक्त-रूप को जानने के लिए तुमको क्या करना है? तो ईश्वर की भक्ति करनी है। वह भक्ति कैसी होगी, सो तफसीरवार के साथ अच्छी तरह से संतों ने बतला दिया है। यह ठीक-ठीक समझ लो तो ऐसा मालूम पड़ेगा कि कोई बहका नहीं सकता। इसीलिए ईश्वर की भक्ति का प्रचार होता है। हमारा देश आनादि काल से—जब से यह देश है, पहला दिन कब हुआ, इसका कोई ठिकाना नहीं है। इसीलिए अनादि काल से कह दिया। अनादि काल से यह आस्तिक देश कहा जा रहा है। यह आस्तिक देश है, इसीलिए वेद-ज्ञान यहाँ प्रगट हुआ है। तो यह आस्तिक देश में ईश्वर का ज्ञान यथार्थ ज्ञान होना चाहिए, न कि ऐसा ज्ञान जो ज्ञान कमजोर हो। इन्द्रिगम्य रूप को ईश्वर मानना कमजोर ज्ञान है। इन्द्रियगम्य रूप नहीं इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर जो स्वरूप परमात्मा का है, परमात्मा को उसी स्वरूप में मानना है, यह ज्ञान एकदम मजबूत है। तो इस ज्ञान को सबलोग धारण करो। सबलोग धारण करें।

यह मत सोचो कि मैं हल चलानेवाला हूँ, उतना ज्ञान कहाँ पाउँगा ? अरे देखो तो कोई कुछ पैसा माँगता है? और यह ज्ञान तुमको बाँटता है। कोई माँगता है कुछ? बहुत जगह सत्संग होता है। सत्संगों में जाओ, यह ज्ञान पाओगे। नहीं पढ़े लिखे हो, तब भी पाओगे, पढ़े लिखे होकर के भी जो भूलते हो तो भी पाओगे और

अपनी भूल को समझ जाओगे। जो इस ज्ञान को नहीं पाता है, यदि वह ईश्वर की भक्ति में प्रवृत्त होता है, उसका प्रवृत्त होना वैसा ही है, जैसा कि कोई मार्ग चलने में प्रवृत्त हो जाय, यात्री बन जाय, चलता जाय; लेकिन उसको पता नहीं कहाँ पहुँचना है, कहाँ को जाना है। जब यही नहीं पता कि कहाँ को जाना है तो वह किधर जाएगा, न मालूम भ्रमता-भटकता उसकी क्या गति हो जाएगी। इसीलिए ईश्वर स्वरूप का ज्ञान पहले प्राप्त कर लो, फिर भक्ति-मार्ग में प्रवृत्त हो जाओ वैसी बात नहीं, इतनी ही बात समझ लो।

श्रीराम ने बहुत समास रूप में—मुख्तसर में लक्ष्मणजी के पूछने पर कि माया किसको कहते हैं? तो उन्होंने बहुत समास रूप मे कह दिया कि इन्द्रियों के ज्ञान में, मन के ज्ञान में जो आवे, सब माया है। बस जाओ।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।

अब सब इन्द्रियों का ज्ञान छूट गए, बाकी क्या रहा, तुम्हारा निजी ज्ञान। तुम्हारे ज्ञान से सब इन्द्रियों में ज्ञान है। तुम्हारा अपना निजी ज्ञान कुछ नहीं है, यह कभी मत समझो। तुम्हारा अपना निजी ज्ञान बड़ा विशाल है।

पूर्ण से जो निकलता है, वह भी पूर्ण। बाकी बचता है, वह भी पूर्ण, एक अजीब बात है । पूर्ण से जो निकलता है, वह भी पूर्ण और पूर्ण तो अपना पूर्ण है ही। निकलने से जो बच जाता है, वह भी पूर्ण। वही तुम निकले हुए पूर्ण हो। लेकिन अपने को नहीं पहचानते हो। यही बात है।

हमलोग समझते हैं कि अग्नि-पूंज से एक चिनगारी—एक

चिनगारी में अग्नि भी कम, चमक भी कम और दाहक शक्ति भी कम। लेकिन ईश्वर ऐसा नहीं है। उसकी चिनगारी ऐसी नहीं है। उसमें तो स्वयं ईश्वर में जो गुण है, उसके कण-कण में वही गुण है।

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।'

अंश कह करके कुछ दर्जा हो गया, अंश कह के कुछ कम गुण हो गया, सो नहीं है। अगर उस कण को पहचान जाओ अर्थात् अपने तई को पहचान जाओ तो यह अच्छी तरह से समझ जाओगे कि पूर्ण से यह कम गोया जरा-सा जो लिया—सो भी स्वरूपत: वही है, वही गुण है। बाकी बचा हुआ भी पूर्ण ही है और वह जो पहले से पूर्ण है, सो तो पूर्ण है ही।

वैदिक ग्रंथ को जो पढ़ते हैं, वे जानते हैं इस बात को। तो ईश्वर की भक्ति करो। ईश्वर की भक्ति करने के लिए ईश्वर-स्वरूप का पहले अच्छी तरह से निर्णय जानो। और तब भक्ति क्या हो सकती है, इसको ठीक-ठीक समझकर वैसा कुछ करो। यह सत्संग इसलिए नहीं होता है कि सुन लो बस बहुत तो याद रखो—इसलिए नहीं कहा जाता है। इसके लिए यह सत्संग कभी सुखी नहीं है। यह सत्संग सुखी है तब जो सुनो, अपने में रखो, अनुकूल चलने के लिए कोशिश रखो। शुरू तो कर दो। शुरू करो, आरम्भ करो—आहिस्ता-आहिस्ता भी चलोगे, तो कभी-न-कभी पूर्णता को पहुँच जाओगे। यही बात है।

(६१वाँ वार्षिक सत्संग, ६.०३.१९६९ ई0)

१८. भीतर की सफाई ध्यान से होती है

प्यारे लोगो !

जितने जीव-जन्तु हैं, सब खुलासा-स्थान पसन्द करते हैं। सबसे खुलासा क्या होगा? सबसे खुलासा आकाश है। आकाश में सूर्य है। सूर्य के ऊपर भी आकाश है, जिसका ओर-छोर, आदि-अन्त नहीं है। चाहे विचार में, चाहे दृष्टि में ऐसा हो, तो वह क्या होगा? जो सारी सृष्टि को धारण करके रखता है। जितने जीव है, जिनको जितना मिलना चाहिए, वे देते हैं। लोग कहते हैं—मैंने पुरुषार्थ किया था, यह पुरुषार्थ जगने और स्वप्न में कुछ मालूम पड़ता है। परन्तु गहरी नींद में सब चला जाता है। इसलिए जो परमाकाश है, वही परमात्मा है। हम ईश्वर को आकाश कहकर नहीं बताते हैं। बल्कि जो अवकाश है, उसके अन्दर यह आकाश है। वह कितना बड़ा अवकाश है?

प्रभु पूरन ब्रह्म अखण्डा, जाके रोम रोम ब्रह्ण्डा।।

केवल आकाश ही नहीं है, पृथ्वी भी है। बिना पृथ्वी के हम रह नहीं सकते। पृथ्वी में पहाड़, जंगल, अन्न और खानियाँ मिलती हैं। ये सब अपने हो गए हैं ? वे प्रभु करते हैं। वे करते सब कुछ हैं और सबसे आसक्तिहीन होकर करते हैं। हमलोग आसक्ति-रहित होकर कर्म नहीं करते हैं। इसलिये कर्मबन्धन में पड़ते हैं और कर्मों का फल भोगते हैं।

जो कर्मबन्धन में नहीं फँसते, वे ईश्वर परमात्मा हैं। ऐसे परमात्मा इन्द्रियगोचर नहीं हैं। इन्द्रियगोचर में उलट-पुलट होती रहती है। जो इन्द्रियगोचर पदार्थ नहीं है, उनको हम पहचानते नहीं हैं। संतों

ने उनकी पहचान का रास्ता बताया है—भेद बताया है।

जबतक बाहर में शून्य का ख्याल रखोगे, बाहर-ही-बाहर रहोगे। लेकिन अन्दर चलो, तो जो बाहर संसार में है, वह अन्दर में भी है। उसके लिये साधन है। ईश्वर भजन करो। इसमें केवल बाहरी बात है नहीं, भीतर की भी बात है। अपने अन्दर में चलने के लिए पैर से नहीं चला जा सकता। जैसे पानी में तैरते हैं, वैसे भी नहीं तैरा जाएगा। इस शरीर में मन बड़ा बलवान है। बाहरी सभी इन्द्रियों को यह प्रेरण करता है, इन्द्रियों से संसार की वस्तुओं की पहचान करवाता है, काम करवाता है। चाहिये कि हम अपने मन को काबू करें। काबू करने के लिए ईश्वर-भजन करें। केवल ईश्वर का बाहर में गुणगान ही नहीं, इससे ईश्वर की महिमा का ज्ञान होता है। अन्दर में चलने पर महिमा की भी जानकारी होती है और उनके स्वरूप की भी जानकारी होती है।

संतों ने भीतर-भीतर चलने के लिए कहा है। बाहर में शरीर को पानी आदि से साफ करते हैं और भीतर की सफाई ध्यान से होती है। जो मूर्तिमान हैं, उनका ही ध्यान नहीं, बल्कि जो मूर्तिमान नहीं हैं, उनका भी ध्यान। जहाँ तक देखने के लिए है, वहाँ तक दृष्टि के अभ्यास से देख सकते हैं। स्थूल और सूक्ष्म को दृष्टि से देख सकते हो। लेकिन यह सीमित है। जो असीम है, उसको नहीं पहचान सकते। मन-बुद्धि से उसकी पहचान नहीं होती है। मन, बुद्धि से परे जो चेतनधार है, उसको लगाना है, जो दृष्टि से देखी नहीं जाती है। उसका यत्न गुरु से जानना चाहिए।

परमात्मा से जो चेतन-धारा निकली है, वह उसी में समा जाती है। वह इतनी पवित्र हो जाती है कि किसी प्रकार मैल नहीं लगती। वह निर्मल तत्व में लीन हो जाती है। संतों ने कहा—पहले मन से जप करो। फिर मन से ध्यान करो। फिर दृष्टि से देखो। *तेजो विन्दुः परं ध्यानं विश्वात्म हृदि संस्थितम्।* अर्थात् हृदय-स्थित विश्वात्म तेजस्-स्वरूप-विन्दु का ध्यान परम-ध्यान है। इससे दिव्य दृष्टि खुलती है, दिव्य शब्द मिलता है। दिव्य शब्द मिलने पर वह उसमें डूब जाती है, जहाँ से यह धारा निकली है। चेतन-धारा में गूँज होती है। उस गूँज वा शब्द को पकड़कर परमात्मा तक जाते हैं।

पहले मोटा-मोटी ध्यान, फिर सूक्ष्म-ध्यान-ज्योति-ध्यान। फिर नाद-ध्यान। इस नाद-ध्यान से परमात्मा में मिलकर एकमेक हो जाते हैं।

परमात्मा को सांसारिक सुख वा दुःख नहीं है। उनको ब्रह्म-सुख है। जो उस सुख में डूब जाएगा, वह संसार में फिर नहीं आवेगा। इसी के लिए दृष्टि-योग और शब्द-योग है।

(संतमत-सत्संग आश्रम, मनिहारी, कटिहार, २५.११.१९७७ ई0)

१९. निर्विषय की ओर चलो

धर्मानुरागिनी प्यारी जनता !

सन्तमत के सत्संग से ईश्वर-भक्ति का प्रचार होता रहता है। यही एक विषय इस सत्संग का है। यह इतने बड़े कोष का भण्डार है, जिसमें अध्यात्म-सम्बन्धी, योग-सम्बन्धी सारी बातें आ जाती हैं। इतना ही नहीं, इस ज्ञान से संसार में भी लोग अपना जीवन-यापन अच्छी तरह कर सकते हैं।

एक किसी कुत्ते या किसी पशु या किसी जलचर या और किसी का क्या दर्जा है? दूसरी ओर मनुष्य का क्या दर्जा है? मनुष्य से उच्च कोई जलचर, नभचर या इतर थलचर नहीं हो सकता। मनुष्य को आत्मा-अनात्मा, सत्य-असत्य का विचार अवश्य होता है, यदि वह उसकी तरफ अपने को जरा भी लगावे, परन्तु मनुष्य के अतिरिक्त और किसी जीव को इस तरह का ज्ञान ,जिस तरह का ज्ञान मनुष्य का बतलाया गया है, सम्भव नहीं। मनुष्य विचार करके असत्य की ओर से सत्य की ओर चल सकता है, किन्तु और कोई जीव नहीं।

मनुष्य के अतिरिक्त और सब जीव-जन्तुओं में यह ज्ञान कि विषयों की ओर से मुड़ो और इन्द्रियों के भोगों से अपने को ऊपर उठाओ, असम्भव है। यह ज्ञान इतना विशेष है कि देवताओं को भी दुर्लभ है। इसलिए मनुष्य-देह देवताओं को भी दुर्लभ कहा गया है, यथा—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा।।'

इसीलिए कहा गया है, शरीर मोक्ष का द्वार है। शरीर यदि एक घर है, तो सम्पूर्ण घर द्वार नहीं हो सकता। घर में द्वार और खिड़कियाँ

होती हैं। बड़े-बड़े छिद्रों को द्वार और छोट-छोटे छिद्रों को खिड़कियाँ कहते हैं। हमारे शरीर में आँख के दो, कान के दो, नाक के दो, मुँह का एक और मल-मूत्र विसर्जन के दो—ये नौ द्वार हैं और जितने रोम-कूप हैं, ये खिड़कियाँ हैं। अनेक बार जनमने-मरने से छूट जाने के लिए इसमें दसवाँ द्वार है। यह शरीर बड़ा पवित्र है। अभी हमलोगों को वही शरीर प्राप्त है। क्या हमलोगों को पशु की तरह रहना चाहिए?

पशु की तरह विषय-भोग ही को यदि हम जाने तो पशु से उच्च कैसे हो सकते हैं ? ईश्वर की भक्ति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन्द्रियों के भोगों से हम अपने को ऊपर उठाकर उसका भजन करें। जो अपने को भोगों में लगाकर रखता है, वह उस ओर बढ़ नहीं सकता। जिस ओर जाने से भव-बन्धन छूटता है, मुक्ति मिलती है, उस निर्विषय की ओर चलो। अर्थात् विषय के ग्रहण से यानी खा जाने से मृत्यु होती है, किन्तु उसी विष को वैद्य के बताए यत्न से सेवन करते हैं, तो रोग का नाश होता है। इसी तरह से संसार में जबतक जीवन है, संसार में से कुछ भी न लेना असम्भव है। जिस प्रकार वैद्य के बताये प्रयोग से विष को दवाई के रूप में लिया जाता है, उसीतरह संतों के बातये अनुकूल, विषय को सहायक बनाया जा सकता है। इसलिए साधुलोग मितभोगी होते हैं। बिना कुछ खाये-पिये, साँस लिए रह नहीं सकते।

जलपान करना, खाना, साँस लेना भी भोग है, इसके बिना आप जी नहीं सकते। इसलिए इसे दवाई के रूप में लीजिए। किसी के ज्ञान में ऐसा नहीं आ जाय कि विषय से छूटा नहीं जा सकता; संतलोग विषयों से अलग रहने के लिए कहते हैं, इसलिए सन्तों का उपदेश झूठा है। सन्तों ने यह बतलाया कि भक्ति करते-करते ऐसे

तल पर अपने अन्दर में पहुँच सकते हो, जिस तल पर पहुँचने से तुम संसार के भोगों से बिल्कुल छूटे हुए रहोगे। वहाँ हरि-रस प्राप्त करते रहोगे।

सोई हरिपद अनुभवइ परमसुख अतिसय द्वैत वियोगी।

इस पद तक उठ सकते हो—

ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो, पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल रूप विषय, कारन निसिवासर धावै।।

(विनय-पत्रिका)

गोस्वामी तुलसीदासजी का ब्रह्म-सम्बन्धी अमृत और गुरु नानकदेवजी का कथन रिम झिम बरसै अम्रितधारा, दोनों एक ही बात है। यदि मन उस ब्रह्म-पीयूष को प्राप्त कर जाय, तो विषयों की ओर क्यों दौड़े? यदि विषय रस से अधिक रस मालूम हो, तो विषय आप ही छूट जाय। जो अमृतधारा को प्राप्त कर सकता है और प्राप्त करके उस तल से नीचे आता है अर्थात् तुरीय अवस्था से पिण्ड में आकर बरतता है, तो उसको उसका ख्याल रहता है। जैसे आप परसाल जो खाए थे, उसका स्वाद अभी तक याद है, उसी तुरीय अवस्था के ब्रह्म-रस को जो प्राप्त करेगा, उसको सदा वह रस याद रहेगा और यहाँ के विषय-रस को कुरस मालूम करेगा। सन्तों के मत में वह यत्न बताया जाता है, जिससे चौथे तल के हरि-रस को साधक प्राप्त कर सकता है।

पहले जो विषयों से मुड़कर तुरीय पर अवस्थित होता है, उसको हरि-रस मिलता है। तुरीय अवस्था में जाने वाले के लिए विषय-रस कुछ मूल्य नहीं रखता। तुरीयावस्था के रस का विस्मरण नहीं होने के कारण संसार के विषय का रस तुच्छ-से-तुच्छ हो जाता

है। यदि ऐसा नहीं होता, तो आजतक कोई सन्त-महात्मा नहीं होते। इसलिए नाम-भजन करो। आपलोगों ने सन्त कबीर साहब के वचन में सुना-*अजर अमर एक नाम है सुमिरन जो आवै।* नाम शब्द होता है। शब्द नही, तो नाम नहीं। जिस शब्द से जिस किसी पदार्थ या जिस किसी व्यक्ति की पहचान होती है, वह शब्द उस पदार्थ या व्यक्ति का नाम कहलाता है और वह उसका नामी होता है। यह शब्द ऐसा होता है, जिसको आप वर्णों में लिख सकते हैं। इसलिए यह वर्णात्मक शब्द है, यथा—रामनाम, शिव नाम आदि सब वर्णात्मक शब्द हैं।

शब्द केवल वर्णात्मक ही नहीं, ध्वन्यात्मक भी होते हैं। पाठशाला में भी लड़के सार्थक और निरर्थक शब्द पढ़ते हैं। सार्थक का अर्थ होता है, वह वर्णात्मक है और दूसरा है बिना अर्थ का, वह ध्वन्यात्मक है। निरर्थक का अर्थ बेकाम का नहीं। परन्तु वह बहुत महत्त्व रखता है। अर्थ नहीं होता, किन्तु महत्त्व वर्णात्मक से विशेष है।

किसी विशेष गवैए को मँगाइए, तो आप देखेंगे कि एक भजन के टुकड़े को गाने में ही वह कितना अधिक समय लगाता है और आप पर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, इस बात को सर्वसाधारण नहीं जानते, विशेष बुद्धिमान् जानते हैं।

एक वकील वर्णात्मक शब्द को बना-बनाकर बहस करके जन्म भर में जितनी कमाई कर सकते हैं, उतनी कमाई तानसेन-ऐसे गवैये के एक ही भजन में हो जाएगी।

वर्णात्मक से ध्वन्यात्मक का महत्त्व विशेष होता है। वर्णात्मक शब्द से दीपक नहीं जल सकता, किन्तु ध्वन्यात्मक-राग से दीपक भी जल जाता है। तानसेन ने दीपक जलाया था, प्रसिद्ध है। उसका गला

दीपक राग के गाने से जल गया था, तो दो महिलाओं ने मेघराग गाकर ठीक कर दिया।

ध्वनि बहुत बड़ी बात है। भीष्म ने प्रतिज्ञा की थी कि वे पाँचों तीरों से पाँचो पाण्ड़वों को मारेंगे। पाँचों पाण्डव महादुःखी हुए। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—सोचो मत, इसके लिए उपाय करो। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को संग लेकर दुर्योधन के पास गए और भगवान के निर्देशानुसार अर्जुन ने दुर्योधन से उसका मुकुट माँग लिया और भीष्म के पास जाकर दुर्योधन के स्वर में उच्चारण करके उन वाणों को माँगा। अर्जुन का रूप दुर्योधन से मिलता-जुलता था। भीष्म ने दुर्योधन जानकर अर्जुन को पाँचों वाण दे दिए। इस प्रकार पाँचों पाण्डवों के प्राण बच गए।

आन्तरिक ध्वन्यात्म शब्द सुनने के लिए कान बंद करो। सदा आवाज होती है, वह सुनने में आएगी। बाजे-गाजे की आवाज ध्वन्यात्मक है, किन्तु आहत है। वर्णात्मक शब्दों में जैसे परमात्मा का नाम है, वैसे ही ध्वन्यात्मक में भी है। वर्णात्मक शब्द परमात्मा की ओर झुकाता है, ध्वन्यात्मक शब्द निर्मल-चेतन की ओर खिंचकर परमात्मा से मिला देता है।

हमलोग बोलते हैं, तो शब्द होता है, नहीं बोलते हैं, तो शब्द नहीं होता है, ऐसा नहीं। जब तक आकाश है, तबतक शब्द रहता है। स्थूल आकाश जब तक है, तबतक स्थूल शब्द रहेगा। यह शब्द 'अजर—अमर' नहीं है। सन्त कबीर साहब 'अजर—अमर' शब्द के लिए कहते हैं कि उस शब्द को कैसे जपोगे? कहते हैं कि बिना मुँह के जपो। अपनी सुरत को उलटाओ, तब 'अजर—अमर—नाम' को पाओगे।

अपने अन्दर पश्चिम की ओर जाने को कहा। अपने अन्दर में

चारो दिशाओं को सन्तों ने माना है। पूर्व का अर्थ है पहले, पहले अन्धकार है, यह पूर्व है। उसके उलटे पश्चिम है। अन्धकार का उल्टा प्रकाश होता है। सन्त कबीर साहब पश्चिम जाने के लिए कहते हैं। अर्थात् प्रकाश में जाने के लिए कहते हैं, वहाँ पर नाम प्राप्त करने के लिए कहा। इसी को गुरु नानकदेवजी महाराज ने कहा–

सुमति पाए नाम धिआए, गुरुमुखि होए मेला जींउ।

सन्तों ने वर्णात्मक नाम का जप और ध्वन्यात्मक नाम का ध्यान करने के लिए कहा। वर्णात्मक शब्द के जप से स्थिरता आती है–

नाम जपत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरति सबद एकै भया, जल हीं ह्वैगा मीन।।

सुरत-शब्द-योग का जो अभ्यास करता है, वह शरीरस्थ होने की दशा को छोड़कर ऊपर उठता है। जैसे मछली पानी में पानी को भोगती हुई रहती है, उसी तरह जीव शरीर में रहकर शरीर के सुख- दुःख को भोगता है, किन्तु जो ध्वन्यात्मक शब्द का ध्यान करता है, वह शरीर से ऊपर उठकर ब्रह्म रस को प्राप्त कर ऐसा मग्न हो जाता है कि संसार के विषय उसके लिए तुच्छ-से-तुच्छ हो जाते हैं। इसी ध्वन्यात्मक नाम का भजन करने के लिए सन्तों ने कहा।

लोग संतों की वाणी की गहराई को नहीं जान पाते, इसीलिए उन्हें छोड़ देते हैं। इस हेतु उससे जो लाभ होना चाहिए, उससे वंचित रहते हैं। सन्तमत ऐसा नहीं कहता कि भक्ति के मोटे-मोटे कर्मों को करो ही नहीं या उसी को बराबर करते रहो, बल्कि ऐसा कहते हैं कि पहले मोटे-मोटे कर्मों को करो, फिर उससे

सूक्ष्म कर्मों में भी आ जाओ। श्रीमद्भागवत् में प्राणमय, मनोमय और इन्द्रियमय–तीन प्रकार के शब्द बताए गए हैं। प्राणमय शब्द को पकड़ोगे, तो प्राणमय शब्द में पिता को पाओगे। इसी का ध्यान अजर-अमर नाम का ध्यान है। यदि मोटी-मोटी भक्ति से ही काम चल जाता, तो गोस्वामीजी ऐसा क्यों लिखते–

'रघुपति भगति करत कठिनाई।' रामायाण में *'रघुपति भगति सुगम सुखदायी को अस मूढ़ न जाहिं सुहाई।'* ऐसा लिखा है। वहाँ 'सुखदायी' और यहाँ 'कठिनाई' ऐसी बात क्यों? तो गोस्वामी जी कहते हैं– कहने में सुगम है, किन्तु करनी अपार है। इसे वही जानता है, जिससे बन आया है। सफरी मछली जल की धारा में भाठे से सीरे की ओर चढ़ जाती है, किन्तु हाथी नहीं चढ़ सकता। जबतक मन फैला हुआ है, तबतक हाथी-रूप है और जब उसका सिमटाव होता है, तब मछली-रूप होकर ऊपर उठेगा।

जड़-चेतन की फेंट बालू-चीनी का मिलाप है। जो अपने को सूक्ष्म चींटी बनाता है, वही चेतन-रूपी चीनी को चुन लेता है। यह उससे होता है, जो सब दृश्यों को समेटकर अपने अन्दर में प्रवेश करता है। उस समय आप सोचेंगे भी नहीं और संसार का भी ज्ञान नहीं रहेगा। इसी के लिए गोस्वमीजी ने लिखा–

सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवइ निंद्रा तजि जोगी।
सोइ हरि पद अनुभवइ परम सुख, अतिसय द्वैत वियोगी।।'

–विनय पत्रिका

जो अपनी चेतन-धारा को समेटकर अन्दर कर लेता है, वह सब दृश्यों को अपने अन्दर देखता है, नींद छोड़कर सो जाता है, वह

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ती अवस्था में नहीं रहता, तुरीयावस्था में रहता है। वही हरिपद का परम सुख भोगता है। द्वैत-वियोगी यानी अद्वैत होकर।

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहिं दसा हींन, संसय निर्मूल न जाहीं।।

—विनय पत्रिका

नाम जपने के समय नाम जपो और ध्यान की जगह ध्यान भी करो। इस प्रकार संतों की वाणी में नाम की बड़ी महिमा है। सन्तों से सद्युक्ति प्राप्त करो, रहनी अच्छी रखो।

'कहै कबीर निज रहनि सम्हारीं। सदा आनन्द रहै नर नारीं।'

सदाचार का पालन करो, तो संसार में भी प्रतिष्ठा होगी और परमार्थ के लिए भी आप अग्रसर होकर परमात्मा को प्राप्त करेंगे। इसके लिये नित्य सत्संग करो। मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए कि नजदीक-नजदीक ही पुस्तकालय है। पुस्तकालय से लोगों को ज्ञान होता है, ज्ञान का प्रचार होता है। उत्तम-उत्तम ग्रन्थों को रखो। ऐसा ग्रन्थ नहीं रखो, जिसको पढ़कर लोग विषयी बनें, ऐसी पुस्तकों का संग्रह नहीं करो। अच्छी-अच्छी पुस्तकों का संग्रह करो और संघ बनाकर पढ़ो। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि इन छोटे-छोटे देहातों में भी पुस्तकालय है। पुस्तकालय से सत्संग को लाभ होगा और सत्संग से पुस्तकालय को लाभ होगा। पुस्तकालय का अर्थ 'पुस्तक का घर' होता है। पुस्तक के लिए अलग-अलग घर बनाइए। सत्संगालय को धार्मिक-दृष्टि से देखिए। इस घर से हमें शिक्षा मिलती है। इस घर के लिए लोगों को तन, मन, धन लगाना चाहिए। सत्संगालय का अंग पुस्तकालय है। इसलिए पुस्तकालय के लिए भी तन-मन-धन दीजिए।

(नवटोलिया, भागलपुर ११.०५.१९५४ ई0)

२०. परम प्रभु परमात्मा एक है

प्यारे लोगो !

इस सत्संग के द्वारा ईश्वर-भक्ति करने के लिए सदा से उपदेश होता हुआ चला आया है। ईश्वर-भक्ति करने के लिए सबसे पहले ईश्वर की स्थिति को जानना चाहिए। फिर उसके स्वरूप को जानना चाहिये। ईश्वर की स्थिति और उसके स्वरूप को पहले जानना चाहिए।

ईश्वर शब्द को लोग बहुत जगह प्रयोग करते हैं। जैसे नर+ईश्वर कहने से राजा का ज्ञान होता है। देवेश और देवेश्वर में भी ईश, ईश्वर लगा हुआ है। यहाँ ईश्वर से बढ़कर कोई नहीं है। जैसे नरेश्वर से बढ़कर देवेश्वर है, तो देवेश्वर के ऊपर देव ब्रह्मा हैं। उनसे भी बढ़कर विष्णु हैं। देवियों के लिए भी ईश्वर शब्द प्रयोग हुआ है। किन्तु यहाँ जिस ईश्वर के लिए कहा जाता है, उससे बढ़कर कोई नहीं।

परमात्मा के लिए ईश्वर शब्द का प्रयोग है। यहाँ एक ईश्वर की मान्यता है। अनेक शरीरों के अनेक जीवात्माओं को अनेक मानने से अनीश्वरवाद होता है, न कि ईश्वरवाद। ईश्वर-ज्ञान के लिए क्या वेद, उपनिषद्, संतवाणी सबमें है कि जो इन्द्रियों के ज्ञान से बाहर है, जो आदि-अन्त रहित है, जिसकी सीमा कही नहीं है, जो अनन्त,अनादि, असीम है, जिसकी शक्ति अपरिमित है जो इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं, आत्मा के ज्ञान में आने योग्य है, वह परमात्मा है। यह बात कहते-कहते मुझे २० वर्ष हो गए, किन्तु अफसोस है कि कुछ लोग ही इसे समझ पाए हैं।

शरीर,इन्द्रियों से जानने और मिलने योग्य ईश्वर मानोगे, तो उसमें ऐसी-ऐसी बात देखने में आवेगी, जिसे देखने से ईश्वर मानने के योग्य वह नहीं रह जाता। उसको ईश्वर मानना अंधी श्रद्धा होगी। जो मन-इन्द्रियों से नहीं जानो, उसको किससे जानो? तो कहा—चेतन

आत्मा से। इन्द्रियों के पृथक-पृथक होने के कारण उनका पृथक-पृथक ज्ञान होता है। सब विषयों को एक ही इन्द्रिय से नहीं जान सकते। आँख से रूप देखते हैं, कान से शब्द सुनते हैं, नासिका से गंध ग्रहण करते हैं, जिह्वा से रस लेते हैं और चमड़े से स्पर्श का ज्ञान होता है। इन्द्रियों के पृथक-पृथक होने के कारण उनका पृथक-पृथक काम है, किन्तु तुम्हारा निज-काम क्या है? तुम्हारा निज काम परमात्मा की पहचान है और अपनी पहचान है। जो मानता है कि आत्मा बिना शरीर के नहीं रह सकती सूक्ष्म शरीर में रहती है, उसका यह ज्ञान अधूरा है। स्थूल शरीर, के बाद सूक्ष्म शरीर, सूक्ष्म के बाद कारण शरीर, कारण के बाद महाकारण शरीर, फिर कैवल्य शरीर, है। उस चेतन आत्मा का निज ज्ञान परमात्मा है। इसके अतिरिक्त परमात्मा को किसी से पहचाना नहीं जा सकता। एक असीम पदार्थ को नहीं मानो, तो प्रश्न होगा कि सब ससीम पदार्थों के बाद में क्या होगा? बिना असीम कहे प्रश्न सिर पर से नहीं उतर सकता। इसलिये एक असीम तत्व को मानना ही पड़ेगा। यदि कहो कि यह कल्पित है, तो अकल्पित क्या है? ईश्वर को कल्पित कहने वाले का ज्ञान मिथ्या है। कल्पित तो वह है, जिसकी स्थिति नहीं हो और मन से कुछ गढ़ लिया गया हो; किन्तु एक अनादि-अनन्त-तत्व अवश्य है। उसकी स्थिति अवश्य है, वह कल्पित कैसा? जो असीम है, जिसकी शक्ति अपरिमित है, उसको तुम अपनी परिमित बुद्धि से कैसे नाप सकते हो? कोई यह नहीं कह सकता कि बुद्धि अपरिमित है।

आजकल विज्ञान का बहुत बड़ा विस्तार हुआ है; किन्तु उनसे पूछो, तो वे कहते हैं—अभी तो समुद्र के किनारे का एक

बालू-कण ही दीख पड़ा है। बुद्धि अभी कितनी विकसित होगी, ठिकाना नहीं। किन्तु बुद्धि अपरिमित नहीं हो सकती। परिमित बुद्धि में अपरिमित को अँटा नहीं सकते। आज की बुद्धि जितनी दूर तक गई, उतनी ही रहेगी या उससे भी अधिक बढेगी? यदि कोई योगेश्वर है, तो बता दे कि बुद्धि कितनी बढ़ेगी? आजकल हमारे देश में अणु बम की खोज हो रही है। दूसरे देश के लोग इसको जानते हैं। यदि तुम जानते हो, तो बता दो, तो समझूँ कि इतना ज्ञान तुमको है। किन्तु इतना भी ज्ञान नहीं है। दूसरे देश के लोगों को बम बनाते देखकर गौरव करते हो कि अणु बम हमने बनाया। तारे, चाँद, सूर्य सभी हमने बनाये? दूसरे देश के लोगों से हम डरते हैं कि कहीं बम गिरा दे, तो हमारा सर्वनाश हो जाएगा; और हम गौरव करते हैं कि ये सब हमने बनाए।

वेद में यही ज्ञान दिया गया है कि इन्द्रियों से परमात्मा को ग्रहण नहीं कर सकते। कबीर साहब ने कहा है—

'राम निरंजन न्यारा रे। अंजन सकल पसारा रे।।
अंजन उतपति वो ओंकार। अंजन मांड्या सब विस्तार।
अंजन ब्रह्मा शंकर इंद, अंजन गोपीं संगि गोब्यंद।।
अंजन वाणीं अंजन वेद, अंजन कीया नाना भेद।
अंजन विद्या पाठ पुरान, अंजन फोकट कथहिं गियान।।
अंजन पातीं अंजन देव, अंजन कीं करै अंजन सेव।
अंजन नाचै अंजन गावै, अंजन भेष अनन्त दिखावै।।
अंजन कहौं कहाँ लग केता, दान पुंनि तप तींरथ जेता।
कहै कबीर कोई बिरला जागै, अंजन छाड़ि निरंजन लागै।।'

यह पद कहकर सभी को माया बताया है और वह परमात्मा

निरंजन है, निर्मायिक है। गुरु नानकदेवजी ने भी कहा है कि–

'अलख अपार अगम अगोचरि ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोति संभउ ना तिसु भाउ न भरमा।।'

अर्थात् परमप्रभु परमात्मा देखने की शक्ति से परे, असीम, मन और बुद्धि की पहुँच से परे, अजन्मा, कुल-विहीन, काल और कर्म से रहित तथा भूल और मनोमय संकल्प से हीन है।

एक-एक शरीर में एक-एक ईश्वर मानने वाले को कितना भ्रम है, उसका ठिकाना नहीं। जो परमात्मा सर्वव्यापी है, वह सबके घट-घट में है। उसको पाने का यत्न अपने अन्दर करो। अन्दर में यत्न करने पर तुम अपने को भी जानोगे और ईश्वर को भी पहचानोगे।

एक अनादि-अनन्त-स्वरूपी ईश्वर को नहीं मानकर जो एक-एक शरीर में एक-एक ईश्वर को मानता है, वह ईश्वर कैसा? जरा सोचो–यदि एक-एक शरीर में एक-एक ईश्वर है, तो एक ईश्वर दूसरे ईश्वर को थप्पड़ लगाता है, गाली देता है, मारपीट करता है। एक ईश्वर दूसरे ईश्वर पर मामला-मुकदमा करता है, तीसरा झूठा वकील-ईश्वर, झूठा फैसला करता है। क्या यही ईश्वर है? ये सब ईश्वर नहीं हैं। वास्तव में परमप्रभु परमात्मा एक हैं, वह अनन्त-स्वरूप हैं।

(सत्संग मंदिर मनिहारी, कटिहार १६.०६.१९५५ ई0)

२१. ईश्वर की सेवा क्या है ?

प्यारे प्रेमीजनो !

इस सत्संग के विज्ञापन में जिसको पढ़कर, सुनकर, 'शान्ति-सन्देश' मासिक-पत्र से जान कर आप लोग यहाँ आए, उसमें अवश्य ही केवल अध्यात्म-विषयक चर्चा, ईश्वर-भक्ति की चर्चा होगी, यह लिखा था, और यही जान कर आपलोग आए। फिर भी इसमें भूदान-यज्ञ वाली बात चल पड़ी। यह भी आपलोगों को नुकसान नहीं पहुँचावेगी। इस सम्बन्ध में वश इतना ही कहूँगा। लेकिन जिस विषय की जहाँ सभा हो, वहाँ वैसा कहा जाय, यही शोभा है। इसीलिए एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को, कुछ अच्छे व्यक्ति कुछ कहने को लाचार हुए। मैं कहूँगा कि ये भी उनलोगों को क्षमा कर देंगे।

ईश्वर-भक्ति के विषय में कल्ह से चर्चा होती चली आ रही है। ईश्वर-भक्ति के विषय के पहले ईश्वर-स्वरूप को जानना चाहिए। ईश्वर-स्वरूप को जाने बिना जो ईश्वर-भक्ति करता है, वह वैसा ही है, जैसे कि कोई यात्री यात्रा करता है परन्तु उसको अपनी पहुँच के निर्दिष्ट स्थान का ज्ञान नहीं हो तो वह किधर जायगा? कहाँ पहुँचेगा? पता नहीं। भटकने का उसको बहुत डर है। इस तरह ईश्वर-भक्ति करने वाले को पहले ईश्वर-स्वरूप का निर्णय होना चाहिए। उससे जो निर्णय हो, उस दिशा में चलना चाहिए। ईश्वर-स्वरूप निर्णय के बिना जो साधक ईश्वर-भक्ति का आरम्भ करता है, वह उपर्युक्त यात्री की तरह ही भटकता है। इन्द्रिय-ज्ञान में जो कुछ आता है, वह माया है। स्थूल इन्द्रियों के ज्ञान में केवल माया ही पकड़ी जाएगी। वह भी केवल स्थूल माया ही। इसका सूक्ष्म और कारण-रूप भी इतना झीना है कि उसको पकड़ने के लिए स्थूल इन्द्रियाँ कभी शक्य नहीं। जो मायातीत है, उसको मन, बुद्धि, भीतर की इन्द्रियाँ भी नहीं पा सकती हैं। इसलिए कहा गया है कि–

'राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह।।'

यह जो बात है बुद्धि पर तत्व है। तब किधर को जाना है? बुद्धि से परे तत्व को पाने के लिए बाहर-बाहर जाना है ? पृथ्वी पर या जल पर अथवा आसमान में वायुयान पर उड़ना है ? बाहर में किसी तरह उड़ो, जैसे कि पहले अष्ट-सिद्धि प्राप्त योगी लोग अपने स्थूल शरीर से आकाश में उड़ते थे, उस तरह उड़ो। अथवा किसी भी तरह वायुयान से उड़ने पर मन, बुद्धि के परे नहीं जा सकते। आप कौन हैं?

'पानी का सा बुलबुला, यह तन ऐसा होय।
पींव मिलन को ठानिये, रहिये ना पड़ि सोय।।
रहिये ना पड़ि सोय, बहुरि नहिँ मनुखा देहीं।
आपुन हीं कूँ खोज, मिलै जब राम सनेहीं।।
हरि कूँ भूले जो फिरै, सहजो जींवन छार।
सुखिया जबहीं होयगो, सुमिरेगो करतार।।'

'आपुन ही कूँ खोज' अर्थात् आप अपना निर्णय करो कौन हो? शरीर पाँच तत्व से बना है। यह तुम नहीं हो। इन्द्रियों में से कोई नहीं हो। अन्तःकरण में—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारों में से कोई आप नहीं हो। ये सब इन्द्रियाँ आपकी है, जैसे आप शरीर पर कपड़े पहनते हैं। वे कपड़े आप के हैं। लेकिन आप कपड़े नहीं हैं, आप शरीर अथवा बाहरी वा भीतरी कोई भी इन्द्रिय नहीं हैं। मन, बुद्धि के आगे आप स्वयं है। आप क्या हैं? आप अपने को जैसा कि कहते हैं, आप जीवात्मा हैं। आत्मा केवल कहने से जीवत्व-भाव का नहीं होना साबित होता है। जीवत्व-भाव के सहित जो आप हैं, मन-बुद्धि, इन्द्रियों से परे हैं। यहाँ तक कि जिस मूल पदार्थ से ये इन्द्रियाँ आदि बनी हैं; उस जड़ात्मिका प्रकृति से भी आप परे, स्वरूपतः आप

चेतन-आत्मा हैं। अन्तःकरण के साथ से जीवत्व-दशा आई है। आप को शरीर मिला है, इस तरह समझ सकते हैं। लेकिन आप अपने को पहचान नहीं सकते हैं। मन, बुद्धि आदि इन्द्रियों तथा मायिक तत्त्वों को मैं यह नहीं हूँ, मैं यह नहीं हूँ, कहकर अपने को जान सकते हैं। लेकिन अपने को पहचान नहीं सकते हैं। जब तब पहचान नहीं हो, तब तक का ज्ञान अधूरा है। इसलिए अपने को पहचान लें। अपने को पहचान लेंगे तो ईश्वर को भी पहचान लेगें। ईश्वर मन आदि इन्द्रियों से परे है, आत्म-गम्य है। आप अपने को अपने से ही पहचान सकते हैं। जैसे आँख से आँख को देख सकते हैं 'ऐना लेकर। इसी तरह भक्ति-योग-रूप साधन है। उससे आप अपने से अपने को देखेंगे फिर पता लग जाएगा कि *'ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।'* है, यह प्रत्यक्ष हो जायगा। क्योंकि जिसको आत्म दृष्टि होती है, उसका द्वैत दूर हो जाता है। सम्पूर्ण संसार में आत्मज्ञानी के लिए *'आत्मवत् सर्वभूतेषु'* हो जाता है। इसका साधन करना चाहिए। भक्ति करो, भजन करो। भक्ति-भजन का एक ही अर्थ है—सेवा।

ईश्वर की सेवा क्या है? एक छोटी सी कहानी कहता हूँ। एक मुनि बालक था। वह जंगल में विचरण करता था। एक राजा उस मुनि बालक को देखा। वह बालक देखने में बहुत सुन्दर था। मालूम पड़ता था जैसे वह सनक, सनन्दन, सनत् कुमार, सनातन में से कोई एक हो। बालक को देखकर राजा बड़ा प्रभावित हुआ। राजा ने कहा—'आप मेरे साथ चलें'। बालक ने कहा—'राजन् ! मेरी शर्त मंजूर करो तो मै तुम्हारे साथ जाऊँगा।' राजा ने कहा—'वह शर्त क्या है ?' बालक ने कहा—'मुझे खिलाओ, तुम मत खाओ। मुझे पहनाओ, तुम मत पहनो। मै सोऊँ तुम जगकर पहरा करो।' राजा ने कहा—'सो नहीं होगा। जो मै खाऊँगा सो

तुझे खिलाऊँगा। जो मै पहनूँगा सो तुझे पहनाऊँगा। मेरा जो पहरा करेगा वही तुम्हारा भी पहरा करेगा।' बालक ने कहा—'मेरा राजा ऐसा नहीं है। वह स्वयं नहीं खाता, मुझे खिलाता है। वह स्वयं कुछ नहीं पहनता, मुझे पहनाता है, मैं सोता हूँ वह जगकर हमारा पहरा करता है। अपने ऐसे राजा को छोड़कर मैं तुम्हारे साथ क्यों जाऊँ। 'वह है ईश्वर।'

सेवा उसकी होती है, जिसको कोई जरूरत होती है। जिसको कोई जरूरत नहीं, उसकी क्या सेवा होगी? लोग गंगा-सेवन करने जाते हैं। कितने श्रद्धालु दंड-प्रणाम करते जाते हैं। कितने देवस्थान में जाते हैं। उस देव के दर्शन वा पवित्र नदी में स्नान के लिए जाना उसकी सेवा है। गंगा किनारे रहकर गंगा स्नान करते हैं, उसका जल-पान करते हैं, यह गंगा-सेवन है। इससे गंगाजी को कुछ मिला नहीं, कुछ लाभ हुआ नहीं और गंगाजी कुछ चाहती भी नहीं है। इसी तरह जो उधर जाता है, जिधर जाते-जाते ब्रह्मसुख का आभास मिलता है, ब्रह्म ज्योति की तेज का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, यह है ईश्वर की सेवा। उधर जाते-जाते इतनी पवित्रता आती है, जितनी की कभी आई नहीं। जिधर जाने से ब्रह्मदर्शन होता है, उधर जानेवाले को लाभ है। ब्रह्म को या ईश्वर को कोई लाभ नहीं। ब्रह्म या ईश्वर-दर्शन किस ओर होता है? जिधर जाने से शरीर, इन्द्रिय का संग छूट जाता है। तीन अवस्थाओं का संग छूटता है और गोसाईं तुलसीदासजी के लिखे अनुकूल देखता है—

'यथा सुअंजन आँजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान।।'

यह भूतल भूरि निधान क्या है? तो कहा—

'सकल दृश्य निज उदर मेलि, सोवइ निंद्र तजि योगी।
सोइ हरिपद अनुभवइ परम सुख, अतिशय द्वैत वियोगी।।'

कोई कहे कि हम तुलसीदासजी की बात क्यों मानेंगे, तर्क को मानेंगे। तर्क करो तो शास्त्रार्थ में जाओ। उसमें गर्मा-गर्मी हो जाय, माथा-पच्ची हो जाय तो क्या फायदा हुआ? जिस दिन पाठशाला में प्रथम-प्रथम पढ़ने गए थे तो अध्यापक ने कहा— यह 'क' है तो बिना तर्क के बिल्कुल वर्णमाला हमने सीखी। गिनती सीख ली। होते-होते ज्ञान हुआ, तर्क हुआ और ज्ञान, तर्क होने पर वही वर्णमाला, वही गिनती रही, कोई फर्क नहीं पड़ा।

श्रद्धा भी हो, तर्क भी हो और गुरु-वाक्य के साथ मेल भी हो, तो मानने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदासजी, गुरुनानकदेवजी, कबीर साहब आदि सब संतों की बातें मिल जाएँ तो क्यों न मानें। श्रद्धा हो और तर्क भी हो। अंधी श्रद्धा गढ़े में गिरावेगी और कोरा तर्क भ्रमित रखेगा। आदमी की शिक्षा श्रद्धा से आरम्भ होती है। और बढ़ते-बढ़ते तर्क भी होता है। यह तो ऐहिक विद्या के अन्दर की बात है। पारमार्थिक विद्या केवल किताबी विद्या है सो नहीं। गुरु द्वारा विद्या पाठ का दरवाजा खुलता है, तब विद्यार्थी पढ़ता है। गुरु से संकेत लेता है, बिना गुरु के काम नहीं चलता। चाहे सांसारिक ज्ञान हो, चाहे पारमार्थिक। गुरु में श्रद्धा होनी चाहिए। आप जानते हैं कि महाभारत का युद्ध भाइयों-भाइयों (कौरव-पाण्डव) में हुआ था। बहुत लोग मारे गए। राज्य पाण्डवों को मिला। पाण्डवों में बड़े युधिष्ठिर थे। ये रोते थे कि हमसे बहुत पाप हुआ। व्यासदेवजी उनको समझाये, लेकिन समझते वे नहीं थे। अन्त में व्यासदेवजी ने उनसे कहा कि तुम अश्वमेध-यज्ञ करो। युधिष्ठिर ने कहा उतना धन मेरे पास कहाँ है? व्यासदेवजी ने रास्ता बताया और धन पाने का अनुष्ठान बताया। युधिष्ठर ने उनकी बातों में श्रद्धा की, उनके बताए मार्ग से गये और धन प्राप्त कर यज्ञ किए। जैसे वह धन युधिष्ठिर के लिए अव्यक्त

था। श्रद्धा-युक्त होकर उन्होंने धन प्राप्त किया और यज्ञ करके शोक-मुक्त हुए। यदि युधिष्ठर व्यासजी की बात में श्रद्धा नहीं करते तो रोते रहते। इसी तरह संतों की वाणी में श्रद्धा अवश्य चाहिए।

कबीर साहब, गुरुनानक साहब, गोस्वामी तुलसीदासजी को देखने की जो दृष्टि थी, मेरी दृष्टि जो है, साधारण लोगों की दृष्टि जो है, सब में अन्तर है। संतों की दृष्टि मोटी-मोटी चीजों को भी देखती है और झीना-मार्ग को भी देखती है।

'भक्तीं का मारग झीना रे।' (कबीर साहब)

'खंनिअहु तीखीं बालहु नींकीं एतु मारगि जाणा।'

(गुरु नानक साहब)

'क्षुरस्य धारा निशितादुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयोवदन्ति।'

—कठोपनिषद्

ऐसी दृष्टि हो तो देखा जाय मन, बुद्धि से आगे जाना होगा ईश्वर-दर्शन के लिए। जैसे गंगा-स्नान के लिए अपने गाँव से बाहर जाना होता है। किन्तु गंगा-स्नान करने से गंगा को लाभ नहीं। स्नान करने वाले को लाभ होता है। वैसे ही ईश्वर-दर्शन के लिए शरीर, इन्द्रिय से बाहर जाना होगा। उसी रास्ते में चलकर ईश्वर की भक्ति होती है। ईश्वर का दर्शन होता है। उस पर चलने से आपको लाभ होगा, ईश्वर को कुछ लाभ नहीं। वह रास्ता बाहर संसार में नहीं, अन्दर में है।

'क्षुरस्यधारा वा खंनिअहु तीखीं वा झींना-मार्ग', इस महीन मार्ग पर चलने के लिए वायुयान से या संसार में किसी तरह से जाना नहीं हो सकता । जाने वाला कौन है? शरीर नहीं है। शरीरों से छूट कर जाना है। जाने वाले आप हैं। पहले मन सहित आप जाएँगे। क्योंकि मन का साथ आप को है। जहाँ तक मन जाएगा, वहाँ तक आप जाएँगे। जहाँ

मन नहीं जाएगा, वहाँ भी आप जाएँगे। क्योंकि मन से भी आप अधिक सूक्ष्म हैं। अन्दर-अन्दर आप जायेंगे। कहाँ से आप जाएँगे? जागने के समय शरीर में आप जहाँ रहते हैं, योगियों ने उसको आज्ञाचक्र कहा है। इसको रहस्यवादी संतों ने कंजाकमल भी कहा है। वहाँ से जाना होगा।

'जानि ले जानि ले सत पहिचानि ले, सुरत सांची बसै दींद दाना।
खोलो कपाट यह बाट सहजै मिलै, पलक परवीन दिवदृष्टि ताना।।'

(दरिया साहब, बिहारी)

इस वास्ते आप को जो साधन करना है, उसमें मन को बहुत एकाग्र करना है। उसका पहला स्थूल—अवलम्ब जो है, वह है जप। दूसरा अवलम्ब है—मानस-ध्यान। तीसरा अवलम्ब है—जो तुम नहीं देखे हो, उसको देखो। गुरु जिस तरह बतावें, उस तरह देखो। उलटा देखो, यह रहस्यमयी वाणी है। उलटा देखने का अर्थ है, बहिर्मुख देख कर अन्तर देखो। फैली निगाह से नहीं सिमटी निगाह से देखो। इतना सिमटाव हो कि एक विन्दुता पर रह सको। तब समझो कि अन्दर के रास्ता पर आ गए। यहाँ से स्थूल से सूक्ष्म में जाने का रास्ता है। धीरे-धीरे अभ्यास करने से होता है। बाहर संसार में सदाचार का पालन करो। जो सदाचार का पालन नहीं करेगा— वह झूठ बोलेगा, चोरी करेगा, नशा खाएगा, हिंसा करेगा, व्यभिचार करेगा। इस तरह पाँचों पापों में रहकर कोई सदाचारी नहीं बन सकता।

'अकेला मत जाना वह राह। गुरु बिन नहीं होगा निर्वाह।।'

(राधास्वामी साहब)

अपने को अपना गुरु मान कर चलना बुद्ध भगवान् की तरह हो तो हो सकता है। लेकिन उनके सामने और दूसरे कोई नहीं हुए। गुरु से ज्ञान लेना उनका शिष्य होना है। गुरु से शिक्षा प्राप्त कर दीक्षा लेना, गुरु के अधीनस्थ रहना है और इसी तरह रह कर साधन करना है। जैसे वृक्ष में

आम लगा, कच्चा आम खट्टा होता है। होते-होते पक जाता है तो वही आम मीठा होता है। मेरे पिताजी कहते थे बुरबक का आम खट्टा होता है। मैं मन में कहता था कि ये क्या कहते हैं। आदमी बुरबक हो वा भला हो आम सबको एक समान लगता है। मैंने आम का एक पेड़ लगाया। वह फला तो आम खट्टा हुआ। उसी आम को पाल पर रखा तो मीठा हो गया। जब तक ठीक-ठीक साधन पूर्ण नहीं हुआ तो आम खट्टा होता है। जब तक परिपक्व नहीं हुआ तब तक जो गुरु का संग छोड़ता है, गुरु का आदेश नहीं मानता है, तो उसमें ज्ञान पूर्ण नहीं होता है। इसलिए गुरुमहाराज जी का कहना था कि संतमत का अधिक सिद्धान्त नहीं है। केवल गुरु, ध्यान और सत्संग— ये तीन हैं। गुरु से शिक्षा लो, दीक्षा लो। जहाँ रहो उनकी आज्ञा के अनुकूल साधन-भजन करते हो। तब बनते-बनते बन जाओगे। ध्यान करो और सत्संग भी करो।

यहाँ पर जो ज्ञान-विचार होता है, उसमें जब सगुण-ब्रह्म का विचार होता है तो वह गंगा की धारा है। ब्रह्म-ज्ञान का विचार सरस्वती की धारा है। और कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य की जो बात होती है, वह यमुना की धारा है। इस तरह यहाँ त्रिवेणी-धारा बहती है। इसमें अपने कर्म का निर्णय होता है। उसके अनुकूल दीक्षा लेता है और करते-करते पूर्ण होता है। इन्हीं बातों में संतमत का ज्ञान पूर्ण होता है। यही हमलोगों को सीखना चाहिए।

मैं आप लोगों का अभिनन्दन करता हूँ। तथा आचार्य विनोवा भावे के संग से जो पवित्र महिला आई है और जो पवित्र पुरूष आए हैं, इनके दर्शनों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ।

(अठगामा, भागलपुर १०.०३.१९६६ ई0)

२२. तुम भी करो, तो मालूम होगा।

प्यारे लोगो !

इस पंच तत्त्वमय संसार के पाँचों में प्रथम का तत्त्व अवश्य ही आकाश मानना पड़ता है। फिर सौर जगत के आरम्भ में सूर्य अवश्य ही मानने योग्य है। इसी तरह यह प्रकृति के फैलाव के अन्दर की सब रचनाओं और प्रकृतियों के सहित आरम्भ में जो मानना पड़ता है, उसी को ईश्वर-परमात्मा कहते हैं। वह अत्यन्त गुप्त है। पंच तत्त्वों के आरम्भ का जो आकाश है यह तो लोग प्रत्यक्ष ही मालूम करते हैं और सौर जगत के आरम्भ के सूर्य को भी लोग प्रत्यक्ष देखते ही हैं। लेकिन प्रकृति के आरम्भ का जो परमात्मा है, वह अत्यन्त गुप्त है। वह सबसे दूर है और सबसे नजदीक भी है। यह भी कह सकते हैं जैसे कि संत कबीर साहब ने कहा है—

'मंदिर में दीप बहु बारी, नयन बिनु भई अंधियारी।'

इसी तरह वह गुप्त-से-गुप्त और प्रकट-से-प्रकट है। काहे ?

'है नेरे सूझत नहीं, ल्यानत ऐसो जिन्द।
तुलसी या संसार को, भयो मोतिया बिन्द।।'

—गोस्वामी तुलसीदासजी

अपने को ही मोतियाबिन्द है। मोतियाबिन्द वह रोग है, जो आँख की पुतली पर पत्थर का-सा परदा हो जाता है। आज कल लोग उसको डाक्टर से निकलवा देते हैं। जिसको मोतियाबिन्द होता है उसको सब कुछ रहते हुए कुछ दीखता नहीं। उसी तरह ईश्वर पाने के लिए जो नेत्र अपेक्षित है, उस पर परदा है। वह नेत्र कैसा? वह नेत्र का नेत्र है और देखने के दृश्य का देखने वाला है। वही है— अक्षर, जिसमें परिवर्त्तन नहीं होता। जो क्षीण होते-होते क्षीण हो जाता है, सो वह नहीं है। वह अक्षर पुरुष है। वही अक्षर पुरुष अपने आपको समझो। यह चेतन-रूप है। इसी के ऊपर शरीर और इन्द्रियों का आवरण हो

गया है। यही मोतियाबिन्द है। इस आवरण के कारण नहीं देख सकते हो, नहीं दर्शन कर पाते हो ईश्वर का। जैसे मोतियाबिन्द के कारण बाहर का कुछ नहीं देख पाते। यही अक्षर पुरुष अन्तःकरण का साथ कर जीवात्मा कहलाता है। इसी को संतों की भाषा में 'आदि-सुरत' कहते हैं।

'आदि सुरत पुरुष तें आई। जींव सोहं बोलिये सो ताई।।

–कबीर साहब

इस अक्षर पुरुष से भी जो परतत्त्व है, वही ईश्वर-परमात्मा है। वही सारे जगत् के तत्त्वों के मूल में है और सबसे प्रथम का है। आप अपने शरीर में हैं, वही अक्षर पुरुष है। उस अक्षर पुरुष को उस प्रभु का दर्शन होना चाहिए। दर्शन करने की कोशिश को भक्ति कहते हैं। भक्ति को ही सेवा कहते हैं। इस सेवा से ईश्वर को कोई लाभ नहीं। लेकिन अक्षर पुरुष को बड़ा लाभ है। दर्शन होते ही, जैसे अभी आपको मालूम होता है कि शरीर और संसार कष्टमय है, सो कष्टमय नहीं मालूम होगा। तब आप शरीर और संसार में रहो वा नहीं रहो, दोनों में ब्रह्म-सुख का एक ही ज्ञान रहेगा। इसी के लिए भक्ति अपेक्षित है।

अभी जो श्री संतसेवीजी ने अपने प्रवचन में अन्तस्साधना की की बात कही है, उसकी बड़ी आवश्यकता है। बाहर-बाहर वह भक्ति नहीं होती। अवश्य ही अभी जैसे सत्संग होता है, आरम्भ में मन लगाने के लिए यह बाहर का कुछ अवलम्ब है। लेकिन चाहिए कि अन्तर्वृत्ति हो। आपको बाहर की चीजों को पकड़ने की वृत्ति हो रही है। बाहरी चीजों का ज्ञान-पहचान आप को है। लेकिन अन्तर्वृत्ति करके कैसा होता है, सो आपको मालूम नहीं है। अन्तर्वृत्ति करो, तब अन्तर्दृष्टि होगी। आपका श्वास अन्तर में रुककर रहे तब अन्तर्वृत्ति

होगी, ऐसी बात नहीं है। इसके लिए जिस तरह की अन्तर्वृत्ति होती है, वह ठीक-ठीक तभी जान सकते हैं, जब आप तीन अवस्थाओं में से अपने को हटाकर चौथी अवस्था में ले जाएँगे। उस अवस्था में ले जाने के लिए पहली बात समझो कि जागने के समय आँख में, स्वप्न के समय कंठ में, सुषुप्ति के समय शरीर-हृदय में जीव का वास होता है—योग-हृदय में नहीं। योग-हृदय में ले जाने के लिए साधन करना होता है। यह स्वाभाविक नहीं है। इसी यत्न को योगाभ्यास कहते हैं। यह आसान तरीके से भी होता है और कठिन तरीके से भी। संतों ने सबसे कहा कि करो। उस अन्तर्वृत्ति होने के साधन को दो भागों में बाँटा। स्थूल-भाग और सूक्ष्म-भाग। स्थूल-भाग में है—

'मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सतभाव।।'

–कबीर साहब

स्थूल-भाग यहाँ से आरम्भ किया जाता है। इससे लाभ यह होता है कि वृत्ति जो बहुत फैली हुई होती है, कुछ समेट में आ जाती है। लेकिन पूर्ण सिमटाव जिस तरह होता है, उसके करने से ही काम चलेगा। इसलिए उसका भी यत्न बताया है। स्थूल-भाग में जो साधन करते हैं, उनको सर्गुण-ही-सगुण मिलता है। जहाँ से सुक्ष्म आरम्भ होता है तो निर्गुण में जाने की डगर मिलती है। वहाँ तो *'मूल ध्यान गुरु रूप है'* और यहाँ *'प्रथमहिं सुरत जमावे तिलपर।'* यह है निर्गुण में जाने का साधन—सूक्ष्म में जाने का साधन। *'मूल–ध्यान गुरु–रूप है'* या *'गुरु की मूरति मन महिं धिआनु।'* से इतना ही समझना चाहिए कि जो स्थूल-सगुण-रूप आप देख चुके हैं, उनको मन में बनाकर देखिए। इसी को गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—'**आम छाँह करि मानस पूजा।**' मानस-पूजा भी इसको कहा है।

मानस-पूजा और मानस-ध्यान एकही बात है। इससे सूक्षम—मंडल में जाने की योग्यता होती है और जिसको तिल पर स्थिरता होती है, उसका सूक्ष्म-मंडल खुल जाता है। स्वर्ग-नरक उसको मालूम होता है। गुरु महाराज ने लिखा है कि सहस्त्रदल-कमल में जो जाता है, वह वहाँ के देवताओं को भी देखता है। उनके विज्ञापन में छपता था— *'कब्र में जाने और चिंता में जलने के पहले मोक्ष प्राप्त करो।'*

संतो ने निर्गुण में जाने का रास्ता बताया है। जो परमात्म—स्वरूप है, उसको पाने के लिए यत्न बताया है और कहा है कि तुम्हारा शरीर जो हाड़, चाम, मांस का है सो इतना ही नहीं है। अन्दर के पहले भाग में अंधकार भरा है। दूसरे भाग में प्रकाश है और तीसरे भाग में ध्वनि-नाद वा शब्द भरा है। विविधता इसमें भी और उन दोनों— अंधकार और प्रकाश में भी है। आखिर में जो आदिनाद-आदि-शब्द मिलता है वही परम-नाद है। जिसके लिए योग शिखोपनिषद् में 'अक्षरं परमोनादः शब्द-ब्रह्मेति-कथ्यते, कहा है।

उसी को संतों ने राम नाम, सत्यनाम आदि कहा है। '**सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा**', दादू दयालजी ने कहा है। आदि-नाद जो है वही निर्गुण है। उसके अतिरिक्त और जितने शब्द हैं सभी सगुण-सगुण हैं। तीन शून्यों के पार में अपने को ले चलो, तो परमत्मा का दर्शन हो। तीन शून्यों को पार करने के लिए कहाँ जाओगे? अन्दर चलो। अन्दर पार करो तो बाहर भी पार हो जाओगे। अन्दर पार नहीं करो तो बाहर पार नहीं होओगे। तीन शून्यों के परे जो है, उसको न तो निर्गुण कहते बनता है, न सगुण। अपने अन्दर में चलने का अन्त कर दो, तो फिर कहीं नहीं चलना होगा। '**अविगत अन्त अन्त अन्तर पट**' कह कर तीन शून्यों का इशारा किया है। अपने अन्दर अंधकार को पार करो, आश्चर्य नहीं है संतों ने स्वयं किया है, तब उन्होंने इसकी युक्ति

बताई है। उन्होंने कहा है कि मैंने किया है, मालूम हुआ है। तुम भी करो, तो मालूम होगा। तीनों शून्य खत्म हुए, काम खत्म हुआ। सारा संसार क्षर है और शरीर आपका क्षर है। यानी शरीर और संसार दोनों क्षर हैं। इनसे परे अक्षर चेतन-पुरुष है। इसके परे जो है उसी को '**क्षेत्र क्षर अक्षर के पार में**' कहा गया है। उसको क्या कहें, विचार में नहीं आता है। विचार वहाँ तक नहीं जाता है।

साधना करके कोई प्रत्यक्ष में देख सकते हैं, सो होगा। लेकिन केवल सुनकर जो जान सकेंगे, सो पूर्ण जानना नहीं होगा। जैसे भूख लगती है तो भोजन करते हैं, तो भूख खत्म हो जाती है, उसी तरह यह बात है। ईश्वर का दर्शन इसीलिए चाहिए कि आपको किसी तरह की भूख नही रह जाय। वह कारण नहीं बच जाय जिससे आप को कष्ट हो। आप उस मूल-पुरुष को पाइएगा, जिसको पाकर कभी वह छूटेगा नहीं। उसके छूटने का गुण आप में नहीं है। यही ब्रह्म-निर्वाण है। यही कारण है कि संतों ने भक्ति-मार्ग का उपदेश दिया है। यह भक्ति-मार्ग ऐसा नहीं कि केवल मोटी-मोटी बातों में रहो। अथवा मोटी-मोटी बातों को छोड़ दो ऐसा भी नहीं। मोटी-मोटी भक्ति करके फिर सूक्ष्म-भक्ति भी करो। इसी को सुन्दर दासजी ने कहा है कि भक्त बिना कान के सुनता है और बिना आँख के देखता है—

'श्रवण बिना धुनि सुनै, नयन बिनु रूप निहारै।
रसना बिनु उच्चरै, प्रशंसा बहु विस्तारै।।
नृत्य चरण बिनु करै, हस्त बिनु ताल बजावै।
अंग बिना मिलि संग, बहुत आनन्द बढ़ावै।।,
बिनु शीश नवै जहँ सेव्य को, सेवक भाव लिये रहै।
मिलि परमातम सों आतमा, परा भक्ति सुन्दर कहै।।

यह परा भक्ति है, समझ-बूझ कर साधन-भजन अच्छी तरह करना चाहिए।

२३. ईश्वर को प्रणाम कैसे करें

प्यारे लोगो !

आपलोगों का कुशल चाहता हूँ। आपलोग ईश्वर-भक्त बनें।। ईश्वर-भक्त बनने के लिए ईश्वर में अडिग विश्वास होना चाहिए। जिसको ईश्वर में अडिग विश्वास है, उसको कुछ भी हो जाय ईश्वर-भक्ति करने में नहीं डिगेगा। जो ईश्वर-भक्ति करने में नहीं डिगेगा, वही ईश्वर भक्त होगा। ईश्वर-भक्ति करने के लिए पहले ईश्वर को प्रणाम करो। ईश्वर को किधर प्रणाम करो? किसी भी ओर हाथ जोड़कर प्रणाम करो, ईश्वर को प्रणाम होगा। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण जितनी भी दिशाएँ हैं, सबमें एक ही तरह ईश्वर विराजमान हैं, इसको जानना चाहिए। जो कोई ऐसा विश्वास रखता है, वह ईश्वर को मानता है।

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो ईश्वर की मान्यता नहीं देते हैं, यह बहुत गलत बात है। ईश्वर सब दिशाओं में रहते हैं। सब के अन्दर, सबके बाहर ईश्वर हैं। जो कोई ऐसा देखता है—देखने का मतलब अडिग विश्वास रखता है, वह ईश्वर को मानता है। ईश्वर को मानने वाला सब दिन प्रणाम करता है। लोग अपनी-अपनी विधि से ईश्वर को प्रणाम करते हैं। जो कोई भक्त संध्या कर ईश्वर को प्रणाम करता है। वह तमाम ईश्वर को देखता है।

संध्या कहते हैं कि ईश्वर से अपने को मिलाने को। अपने को जो ईश्वर से मिलाता है, वही संध्या करता है। उसके शरीर में जो चेतन है, उसको वह धार-रूप में परिणत करता है। धार-रूप में परिणत करके अपने अन्दर की उत्कृष्ट धारों को मिलाता है। जहाँ उत्कृष्ट धार मिली, वहीं संध्या हुई। जभी मिलाया, तभी संध्या हो गई। यही संध्या सीखने के लिए ऋषि-मुनि लोग गुरु का आदर करने कहते हैं। गुरु का विश्वास कराते थे। इसमें ऐसा होता है कि शरीर की चेतन-धारों को मिलावे, मिलाने को जाने। इसी को सीखने के लिए गुरु धारण करना चाहिए। शरीर में जो चेतन है,

उसको गुरु से जानकर जो मिलाता है, वही संध्या करता है। वही प्रणाम करता है। गुरु से संध्या के भेद को जानो और ईश्वर को प्रणाम करो। इस कर्म को जानने वाला संसार में बहुत कम हैं। नहीं है सो नहीं। है, कम हैं।

ईश्वर की स्थिति में जो संदेह करता है, वह ऊँचे ज्ञान को नहीं जानता है। मैं बहुत स्वल्प वचन में सार बात कहता जाता हूँ। गुरु की युक्ति है कि पहले जानो कि ईश्वर है और अवश्य है। इसलिए कि एक अनादि-अनन्त-तत्त्व का मानना अवश्य होता है। कोई कहे कि अनादि-अनन्त-तत्व नहीं है, तो वह नहीं सोच सकता है। जो अनादि-अनन्त-तत्व को जानता है, वह ईश्वर को सर्वव्यापी समझता है। वही अपनी चेतन-धारों को मिलावेगा। मिलन-स्थान में, चेतन के मिलाप के स्थान में वह अपनी चेतन-धारों को ईश्वर से मिला सकता है, दूसरा नहीं। यह भेद बहुत गुप्त है। इस तरह चेतन-धारों को मिलाकर जो प्रणाम करता है, वह सर्वत्र ईश्वर-ही-ईश्वर को देखता है। उसकी संध्या ठीक होती है।

सब धर्मों, सब मजहबों में ईश्वर को जो लोग मानते हैं, इसलिए कि एक अनादि-अनन्त तत्व को माने बिना ऐसा नहीं हो सकता है। सबसे पहले का कुछ नहीं है, ऐसा नहीं हो सकता। सो कैसे होगा? सबसे पहले का एक अनादि-अनन्त-तत्व का होना मानना है, जो प्रत्यक्ष है। उसको लोग दूर नहीं कर सकते। जो कोई इस प्रत्यक्ष—तत्व को नहीं जानते हैं, वे उस समय के Prayer (प्रेयर) में, नमाज में, संध्या में सफल नही हो सकते। ईश्वर को मानने के लिए चेतन-धारों को मिलाओ। आपके शरीर में चेतन-धारें हैं, तब शरीर जीवित है। शरीर में बायाँ और दायाँ दो ओर हैं। उसको समझो, उसको जानो तब चेतन-धारों को मिलाओ। जो चेतन-धारों को मिलावेगा, वही ईश्वर को प्रत्यक्ष जानेगा कि सर्वव्यापी है।

मैने इतना कह दिया कि ईश्वर को मानो, उसको प्रणाम करो तब और बात। ईश्वर में संलग्नता पीछे होती है, परन्तु ईश्वर का विश्वास पहले होता है। क्योंकि वह विश्वास दिलाता है कि कि अनादि-अनन्त -तत्त्व अवश्य है। एक अनादि-अनन्त-तत्त्व को मानने से ईश्वर को मानना सरल-स्वाभाविक हो जाता है। आज आप लोगों के बीच मैंने यही बताया कि ईश्वर को मानो, ईश्वर को प्रणाम करो। प्रणाम करने की विधि गुरु से जानो। कोशिश करने पर चेतन-धारों के मिलन का ज्ञान होता है, वहीं संधि है।

आज इतना ही कहा, फिर पीछे कभी आकर कहूँगा। भेद बहुत विस्तार है और जब समझ में आ जाय तब विस्तार होने पर भी ईश्वर का भेद गुप्त नहीं रहता। गुरु में एक तो गरुता होती है और दूसरी बात, जो गुरु नहीं है, उसमें गरुता नहीं रहती, तब वह गुरु नहीं रहता। मैं आप लोगों से यही कहता हूँ कि एक अनादि-अनन्त-तत्व का ज्ञान होना ही चाहिए। वही अनादि-अनन्त-तत्व ईश्वर है। वह कोई ऐसा स्थूल नहीं है, जैसे पंच तत्वों में से कोई एक। वह बहुत Soft (सोफ्ट) भी है और बहुत Hard (हार्ड) भी। Soft (सोफ्ट) होने पर भी गुप्त है, गुरु-भेद से प्रकट होता है। गुरु का भेद जानो। उसको काम में लाओ और जो प्रकट होता है, उसको पकड़ो। जो तुम्हारे शरीर में एक होकर रहे, इतना ही गुप्त-भेद, गुप्त-रहस्य है।

'गुरु से भेद जो लीजिये, शीश दीजिये दान।
बहुतक भोंदू बहिं गये, राखि जींव अभिमान ।।'

-कबीर साहब

आप सब लोगों का मंगल हो ! मंगल हो !! मंगल हो !!!

(राजेन्द्र नगर, पटना १४.११.१९७१ ई0)

२४. बाहर का रस फीका पड़ जाता है।

प्यारे प्रिय दर्शको !

किसी को कोई काम करना होता है और उसके लिए उसको कुछ सहारा मिलता है, तो वह बहुत प्रसन्न होता है और काम कर लेता है। ईश्वर-दर्शन सत्संग का सर्वश्रेष्ठ विषय है। इसका सहारा कुछ मिल जाय, तो बहुत अच्छा हो। यहाँ ईश्वर-दर्शन के लिए पूजा-पाठ, कीर्त्तन आदि जितने करते हैं, इनमें से कोई ऐसा सहारा नहीं है, जो हम जानें कि अपने से आप ईश्वर-प्रदत्त सहारा मिल रहा है। हमलोग अपनी श्रद्धा के अनुकूल प्रतिमाओं का दर्शन करते हैं और में आदि। ये सब-के-सब बाह्य-इन्द्रिय के सहारे मन से पकड़ते हैं और उसको अपना सहारा कहते हैं। परन्तु जब केवल चेतन आत्मा रहे, मन-बुद्धि आदि इन्द्रिय नहीं रहे, तब परमात्मा-स्वरूप को ग्रहण कर सकते हैं। जो मन-बुद्धि आदि इन्द्रिय से ग्रहण नहीं हो, वह स्वरूप कैसा है? गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है-

'अनुराग सो निंज रूप जो, जगतें विलच्छन देखिये।
संतोष शम शीतल सदा दभ, देहवन्त न लेखिये।।
निर्मल निरामय एक रस, तेहिं हरष शोक न व्यापई।
त्रयलोक पावन सो सदा, जाकीं दशा ऐसीं भई।।

चेतन आत्मा बूढ़ा, बच्चा, जवान नहीं होता। यह जो चेतन स्वरूप है, इसका सहारा कैसा होना चाहिए ? इसका सहारा बाहर में हो, ऐसा नहीं। लोगों ने अपने अन्दर की खोज की, जैसे उपनिषद् के ऋषि लोग और वेद की आज्ञा के अनुकूल जिन्होंने प्राप्त किया, वह है अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद। परमात्मा की ज्योति और नाद तुम्हारे अंदर है, ये सहारे मनुष्य-कृत नही, ईश्वर-कृत हैं। अन्दर प्रवेश करो, पाओगे। वेद में है अन्तर्नाद, आत्मा का पापशोधक-नाद है। साधक

चमकती हुई ज्योति को अपने अन्दर पाते हैं। अपने अन्दर ज्योति और नाद नहीं है, इसके माननेवाले को समझना चाहिए कि बिना प्रकाश के हम बाहर की चीज को नहीं देख सकते। जातीय पदार्थ को जातीय पदार्थ से सहारा मिलता है। यदि हमारी दृष्टि ज्योति की जाति की नहीं होती तो बाहर की ज्योतिसमझते हैं कि यह सहारा है। इससे भी कोई विशेष-चीज मिले जो हमारी बनाई नहीं हो, स्वयं ईश्वर-कृत हो, तो विशेष सहारा जानने में आवे। ईश्वर बाह्य-इन्द्रिय का विषय नहीं है। मन-बुद्धि आदि का भी विषय नहीं है, चेतन आत्मा का विषय है। हमलोगों को यदि चेतन आत्मा का ज्ञान हो कि वही हम हैं, तो हमलोग उस सहारे को पहचान सकते हैं।

मन में चेतन आत्मा दूध में घीउ की तरह सम्मिलित है। जहाँ मन होगा वहीं चेतन आत्मा होगी। मन सहित चेतन आत्मा इस शरीर में है। शरीर के अन्दर में ही वह सहारा मिले तो बड़ा अच्छा हो। पहले ही मन को चेतन आत्मा से फुटाया नहीं जाता। इसलिए पहले स्थूल-चिह्न लेते हैं, सो भी एक नहीं। किसी की श्रद्धा राम में, किसी की श्रद्धा कृष्ण में, किसी की श्रद्धा गुरु में, किसी की श्रद्धा देवी में, किसी की श्रद्धा शिव का सहारा नहीं मिलता। दूसरी बात है कि साधक अन्धकार में ध्यान करता है, उसको प्रकाश मालूम होता है। यह ऐसा प्रकाश है कि संसार के सभी प्रकाश और सभी खूबसूरतियाँ किसी काम की नहीं रहतीं। उस प्रकाश के सामने यह सूर्य भी अंधकार है । जो करके देखने की चीज है, उसको बिना किए कोई कैसे अनुभव कर सकता है । अन्दर में प्रत्यक्ष प्रकाश है, इसको करके देखो तो विश्वास होगा। हमारी दृष्टि जो ज्योति-स्वरूप है, अपने अंदर के प्रकाश को देख ले तो उसका मुकाबला कोई

खूबसूरत नहीं कर सकता। जिस रूप में तेज नहीं है, वह भद्दा लगता है। 'जिमि बिनु तेज न रूप गोसाई' मृतक-शरीर में से ज्योति निकल जाती है, तब वह पहले जैसा सुन्दर नहीं लगता। इस शरीर में ज्योति अवश्य है।

'मन हीं सन्मुख नूर है, मन हीं सन्मुख तेज।
मन हीं सन्मुख ज्योति है, मन हीं सन्मुख सेज।।'

—दादू दयालजी

इस शरीर में मन अपना स्थान कहीं अवश्य रखता है। आँख के अन्दर उसका वासा है। दायीं-बायीं आँखों के बीच अन्तरस्थित शिवनेत्र में इसका निवास है। इसके समाने ज्योति है।

'मनहीं सौं मन थिर भया, मनहीं सौं मन लाइ।
मनहीं सौं मन मिलिरह्या, दादू अनत न जाइ।।'

पिण्डी मन की धारों को समेटो और उसके केन्द्र में उसको लय करो। इसका यत्न जानो और अभ्यास करो, तब मन स्थिर होगा। मन की स्थिरता में सब काम बन जाएगा। सूरदाजी ने कहा है—

'नयन नासिका अग्र है, तहाँ ब्रह्म को बास।
अविनाशी विनसै नहीं, हो सहज ज्योति परकास।।'

बाबा नानक ने कहा है—

'घट-घट अंतरी ब्रह्मु लुकाइआ, घटि-घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमतीं, निरभै ताड़ी लाई।।'

निडर-ध्यान लगाओ, अन्धकार का बज्र-कपाट खुल जाएगा। ईश्वर की ज्योति जो सब में समाई है, देखोगे। सारे संसार में देखिए क्या खेल है? संसार से प्रकाश को हटाइए तो कोई काम नहीं होगा। सूर्य हट जाएगा तो गर्मी हट जाएगी, कोई काम नहीं

हो सकेगा। शब्द को बचपन से, जवानी और बुढ़ापे तक सीखते हैं। कठिन-से-कठिन काम शब्द से होता है। अभी चीन से अनबन हो गया है और यदि शब्द से लिखकर वा बोलकर मेल हो जाय तो सारा अनबन मिट जाएगा।

ईश्वर की उपासना में भी शब्द और प्रकाश का सहारा है। वह प्रकाश भौतिक-प्रकाश से भिन्न प्रकार का है। ईश्वर प्रकाश-स्वरूप है, अन्धकार-स्वरूप नहीं। ऐसा नहीं की कोई अभ्यासी अपने अंदर सूर्य, चन्द्र, तारे नहीं देखता। अभ्यासी अपने अन्दर में प्रकाश देखता है तो उसके लिए बाहर का प्रकाश फीका पड़ जाता है। यत्न करके इसको पकड़ना चाहिए। ईश्वर के प्रेमियो। केवल बाहर-ही-बाहर ईश्वर को नहीं खोजो। बाहर-बाहर खोजने के बाद अन्दर-अन्दर भी खोज करो। बिना किसी के सिखाए आप एक अक्षर भी नहीं लिख सकते। बुद्ध भगवान ने कहा है–*'ज्ञानीं केवल सिखाने वाले हैं, करना तुमको हीं पड़ेगा।'* अपना सिमटाव करो, जहाँ मैंने बताया है। सद्ग्रन्थ, गुरु का वाक्य और अपना विचार मिल जाय तो कितना विश्वास होगा । गुरु नानक ने कहा है–*'अंतरिं जोत भई गुरु साखीं चींने राम करंमा।'* अन्तर में प्रकाश हुआ, यह गुरु की गवाही है और तब गुरु के दयादान को पहचाना। इस सहारा को पकड़ो। जो इसको पकड़ता है, वह विषयानन्द में नहीं दौड़ता। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है–

'ब्रह्म पियूष मधुर शीतल जो, पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल रूप विषय, कारण निसिवासर धावै।।'

विषय-रस में जो दौड़ता है, इसका मतलब है कि

ब्रह्म-पियूष उसको मिला नहीं है। मनुष्य अपने अन्दर अभ्यास करके ब्रह्मज्योति और ब्रह्मनाद को प्रत्यक्ष देख-सुन सकता है, ये ही सहारे हैं। संतों की वाणियों में हम यही बात पढ़ते हैं। क्या वेद और क्या उपनिषद्-ज्ञान, सब में यह बात है। आज भी जो करते हैं, उनको चिह्न मिलता है। भजन करने की भी शक्ति होती है। जो अभ्यास को बढ़ा लेते हैं, उनको चिá देखने में आता है। जो बाह्य-दृष्टि से कुछ देखना चाहता है, वह नहीं देख सकता। अन्तर्दृष्टि करो, तब देखने में आवेगा। आँख बन्द करो, मानसिक रचना को छोड़ो। बाहर का देखना छोड़ो, अन्तर में दृष्टि रखो, तब देखने में आवेगा कि अन्दर में क्या है। पवित्रता से रहो, ईश्वर-भजन करो श्रवण, मनन और साधन होना चाहिए। इसमें बल पाने के लिए सदाचार का पालन आवश्यक है। सदाचार-पालन के बिना अन्तर्ज्योति और अन्तर्नाद को कोई नहीं पा सकता है। कबीर साहब ने कहा–

'गगन कीं ओट निशाना है।
दहिंने सूर चन्द्रमा बायें, तिनके बींच छिपाना है।।
तन कीं कमान सुरत का रोदा, शब्द बाण ले ताना है
मारत बाण बिंधा तन हीं तन, सतगुरु का परवाना है।।
मार्‌यो बाण घाव नहिं तन में, जिन लागा तिन जाना है।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जिन जाना तिन माना है।।,

उस निशाने को कौन पावेगा? तन की कमान और सुरत की डोरी बनाओ। जिसकी इन्द्रियाँ बेकाबू हैं, उनकी डोरी खुली हुई है, उस पर से तीर नहीं छूट सकता। तमाम शरीर में जो चेतन की धार बिखरी है, उसको केन्द्र में केन्द्रित करो, जहाँ गुरु ने बताया है। उस निशाने

पर जो कोई ख्याल रखता है, तो मन की सब धारें एक जगह स्थिर होती हैं। जैसे दोनों हाथों से किसी चीज को बहुत मजबूती से (पूरा बल से) पकड़ने से शरीर का सारा बल उस ओर हो जाता है।

गुरु नानक ने कहा है—*'बेड़ा बाँधो सुरत का, चढ़ि उतरो भवजल पार ।'* सुरत का बेड़ा बनाओ। यदि यत्न जानते हैं तो कीजिए। नहीं जानते हैं तो किसी से जानकर कीजिए। सदाचार से इसके अभ्यास करने में बल मिलता है। जिसका मन विषयों में लगा रहता है, उसको बल नहीं मिलता। सदाचार के पालन में वैराग्य होता है। विषयों को ग्रहण नहीं करने से वैराग्य होता है। जो अन्तर्साधना करता है, इन्द्रियों से चेतन-धारा खिंच कर केन्द्र में केन्द्रित करता है, तो उसको जो रस मिलता है, उसको बाहर का सब रस फीका पड़ जाता है। इसलिए

'नव दरवाजे नवेदरफींके रस अमृत दशवें चुईजै।'

चाहे बाबूसाहब का कपड़ा पहन कर, चाहे लंगोटी पहन कर करो। विद्वान करो, अविद्वान करो। स्त्रियाँ करो, पुरुष-वर्ग करो। सभी देश और सभी जाति के सभी कोई इसका अभ्यास करें। इसमें शरीर को तोड़ने-मरोड़ने की जरूरत नहीं है। कबीर साहब ने कहा है—

'न जोगीं जोग से ध्यावै, न तपसीं देह जरवावै ।
सहज में ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहिं आवै ।।'

इस विषय को थोड़ा-थोड़ा ही सुनना चाहिए। यह कोई कथा नहीं है, सैर नहीं है, जिसमें अधिक मन लगे। अधिक सुनने से भी क्या फायदा, यदि उसमें से करने योग्य कर्मों को नहीं किया।

(सत्संग भवन, इलाहाबाद १.१०.१९६३ ई0)

❁ ❁ ❁

कुछ सूक्तियाँ

✷ धनोपार्जन पाप करके भी होता है, किन्तु परमार्थ पाप करने से नहीं हो सकता। इसलिए पाप मत करो। सत्संग—ध्यान करते रहो; संसार और परमार्थ दोनों ठीक—ठीक चलेंगे।

✷ जैसे दवाई की मात्रा के अनुसार दवाई सेवन करते हैं, इसी तरह संसार में रहने के लिए दवाई के रूप में विषयों का उपभोग कीजिए, उसमें आसक्त नहीं होइए।

✷ धन नहीं रहने पर जलते रहो और धन हो तो भूत की तरह नाचते रहो। तृप्ति नहीं आती धन से।

✷ हमारा सुधार माता की गोद में ही होना चाहिए अथवा माता के पेट से ही सुसंस्कारित करने का प्रयत्न होना चाहिए। इसका अर्थ है—माता-पिता स्वयं समुचितरूपेण सुसंस्कृत हों।

✷ मुझे किसी मजहब से घृणा नहीं है, मैं सभी मजहबों में ध्यान को देखता हूँ। किसी मजहब में तुम हो, ध्यान करते हो कि नहीं? ध्यान करो।

✷ ईश्वर की भक्ति और अच्छा आचरण, ये दो बातें मनुष्य में हैं तो ठीक मनुष्य है, नहीं तो वह पशुवत् है।

✷ दूसरों से कष्टों को पाकर भी, अपमान पाकर भी धर्म नहीं छोड़ो। धर्म के लिए कोई कष्ट देता है, अपमान करता है तो उसको सह लो।

✷ जहाँ भक्ति है, वहीं मुक्ति है और जहाँ मुक्ति है, वहीं शांति और कल्याण है।

—महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज